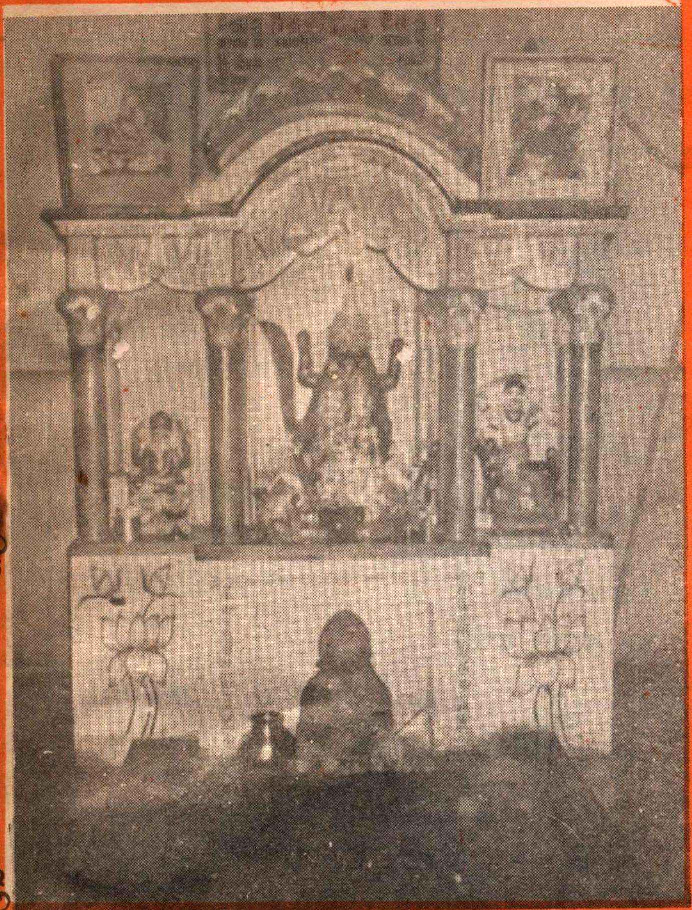

५० वर्षों से प्रकाशित

कौल-कल्पतरु

चण्डी

साधन-माला

श्री हनुमान मन्त्र-प्रयोग
नेत्र-रक्षा प्रयोग
'स'-कार-प्रयोग
एवं
श्री मातङ्गी-कवच

परम पूज्या श्री माई जी

रेणुका शबरी महा - संरक्षण यन्त्र

वशीकरण, आकर्षण, प्रेत - बाधा आदि की शान्ति हेतु श्वेतार्क (मंदार) अथवा श्याम धतूर की जड़ से लिखकर धारण करें ।

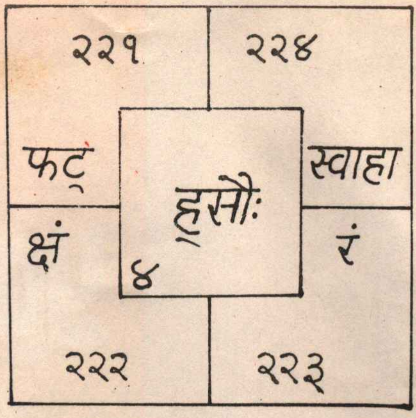

(४)

श्रीहरि-मर्कट संरक्षण यन्त्र

(५)

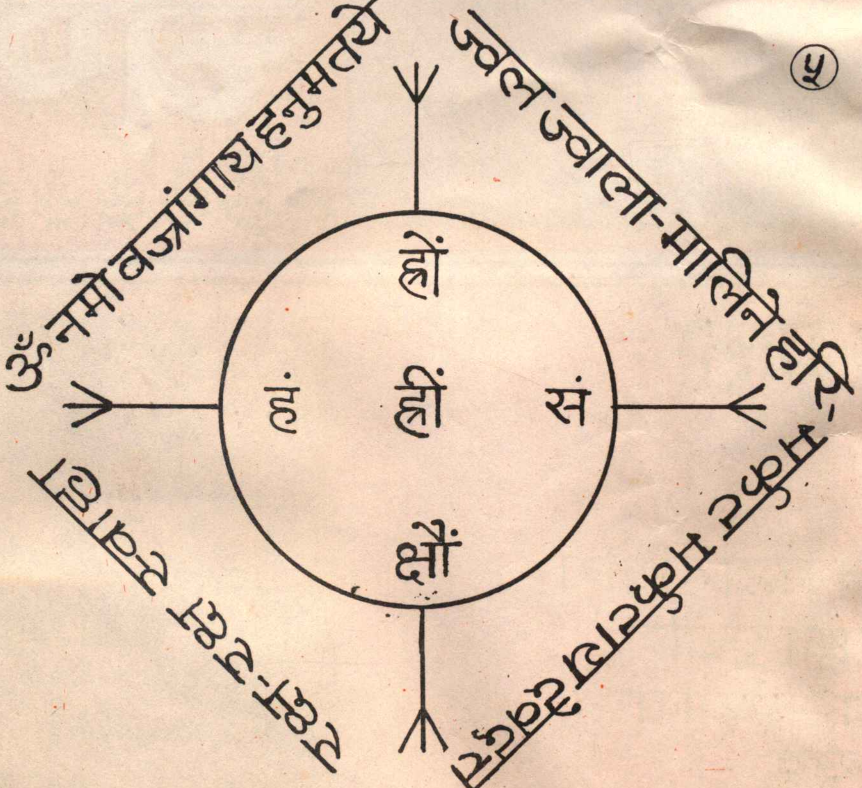

भोज - पत्र पर केसर-युक्त जल एवं दाडिम की जड़ से लिखकर धारण करें ।

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग–२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ५

वार्षिक शुल्क : रु० ५५
आजीवन शुल्क : रु० ५५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ५००/३००
आजीवन : ५०००/३०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
वरा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग–२११००६

हिन्दू - धर्म के ज्ञान - मय क्रिया-पक्ष
की
'राष्ट्र-भाषा' में शोध-पूर्ण प्रस्तुति

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ५१ — अङ्क ५
'पार्थिव' सम्वत्, श्रावण, २०४९ वि० — अगस्त, १९९२

इस अंक म

- 'शक्ति-तत्त्व'—एक समीक्षा ... १३०
- मानव-शरीर की पाँच अवस्थाएँ ... १३१
- कालिदास और घटकर्पर—एक रोचक प्रसङ्ग ... १३४
- तुझे देख माँ कालिके ! ... १३६
- 'सनातन धर्म' की व्यापकता ... १३७
- माँ भद्र-काली प्रतिष्ठान, इटखोरी ... १४१
- स्वर-योग ... १४३
- साधन-माला ... १४५-१६०

'चण्डी' वर्ष ५१, पहला विशेषाङ्क :

'शक्ति-तत्त्व'

* **श्री रणवीरप्रसाद, अवकाश-प्राप्त मुख्य आयुक्त आय-कर, पश्चिम बङ्गाल**

'शक्ति-तत्त्व'—विशेषाङ्क का प्रथम आकर्षण, चुम्बक की भाँति कबीर साहेब रचित स्तुति **'मेरी मैया'** है। आपने सही कहा, **शक्ति-तत्त्व का अनूठा विवेचन है। कबीर-साहित्य** और **कबीर-ग्रन्थों में** प्रचुर आध्यात्मिक सम्पद् भरा पड़ा है। यद्यपि हमारे लिए दुर्लभ किन्तु आपके लिए तो दामाखेड़ा, बाराबङ्की या वाराणसी से सहज सुलभ होंगे। कबीर का प्रत्येक पद सत्य पर टिका हुआ, परम स्थायी, परमोपयोगी है। लोकोक्तियों में **कबीर के दोहों और साखियों की गूँज** गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में सुनी जाती है। कहते तो हैं कि **कबीर साहेब** निर्गुणवादी रहे। यह **निर्गुण - वाद** है क्या ? **जब हम माँ को, केवल माँ को, सब जगह, सब में देख लें—तो क्या सगुण, क्या निर्गुण ?** अन्यत्र आपने लिखा है—**क्या वेदान्ती, क्या भागवत, क्या योगी, क्या तपस्वी, क्या ज्ञानी, क्या कर्मी—माँ को किसने नहीं खोजा ?** वेद-शास्त्र पढ़ें या न पढ़ें—जब **ढाई अच्छर प्रेम** की बात **कबीर साहेब** ने कही, तो माँ की ममता की ही तो चर्चा थी, और क्या ? उन्होंने कहीं कहा भी है—**जौ तैं तुरुक तुरकिनी जाया, पेटहि काहे न सुनत कराया; जौ तैं बाम्हन बाम्हनी जाया, आन बाट काहे नहिं आया ?**

बच्चा गन्दे पाँव दौड़ा, माँ की गोद में घुसा, वत्सला माँ नवीन वस्त्रों में भी लपक कर उसे दुध पिलाने लगी। माँ ने कब फिक्र किया कि नई साड़ी में दाग पड़ जाएगा ? माँ का दूध बहेगा, रुकेगा तो रुग्ण कर देगा। बच्चा पीकर स्वस्थ रहेगा। माँ की ममता में सब कुछ डूब गया—यही तो 'प्रेम' है ! माँ—माँ है ! फिर क्या रहा, क्या नहीं, किसे इसकी चिन्ता ? वाह रे, **कबीर साहेब** !

'शक्ति-तत्त्व' का दूसरा सशक्त अङ्कन **'माँ'—**स्वामी जी महाराज का सार्थक शीर्षक है। **'माँ'—** कितना मोहक, अपितु सार्थक शीर्ष दिया है पूज्य-पाद ने। वास्तव में, **'चण्डी'** के जो अङ्क अथवा विशेषाङ्क पढ़ने को मिल रहे हैं, उन्हें मैं तो आद्योपान्त ही पढ़ जाता हूँ, भले ही माथे में कुछ धँसे या नहीं। सभी कृतियों में आपके सम्पादन का अलङ्करण, जहाँ आप बारम्बार **'माँ'** को स्मरण करते हैं बड़ा प्रिय लग रहा है। आप धन्य हैं, **माँ की सेवा** में आपका जीवन अर्पित है !

'माँ'—शीर्षक के प्रति वैसे तो बुद्धि-विलास, वाग्-विलास, तर्क-विलास हम सब जितना चाहें करते रहें, किन्तु उन सबके बीच से कुछ अनमोल मोती हमने चुने हैं—'**···माँ, एक-मात्र सत्य वस्तु तुम्हीं हो। तुमसे अतिरिक्त जो कुछ है, वह असत् है।···तुम नित्या हो। माँ ! अर्द्ध-मात्रा-तुरीया—निर्गुण ब्रह्म भी तुम्हीं हो।···हे माँ ! अव्यक्त-व्यक्त निखिल-रूप ही तुम्हारा है।···माँ ही क्षान्ति है।··· करुणा करना ही माँ का स्वभाव है।···दुष्ट का संहार करके भी माँ दुष्ट के प्रति करुणा ही करती है।**'···पूज्य-पाद ने कहा—**नहि माता समुपेक्षते सुतम्।** सङ्ग ही यह भी कहते हैं—**कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवेत्।** (पता नहीं 'भवेत्' ठीक है अथवा 'भवति'।) **'जगत् में माँ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।** तथ्य तो यही है कि **'सकल कार्यों में', 'सकल वाक्यों में', 'समस्त भावनाओं में' माँ की सेवा विस्मृत न कर हम अपना जीवन बिता सकें, तभी समस्त कर्म-क्षय करके 'माँ को लेकर ही', 'माँ का होकर ही'** रह पावेंगे। **सीधे शब्दों में यही तो 'जीव की संसार से मुक्ति है।'**

इतना ही यदि सध जाय, तो साधने को और क्या रह जाएगा ? **माँ ! माँ ! माँ !** * *

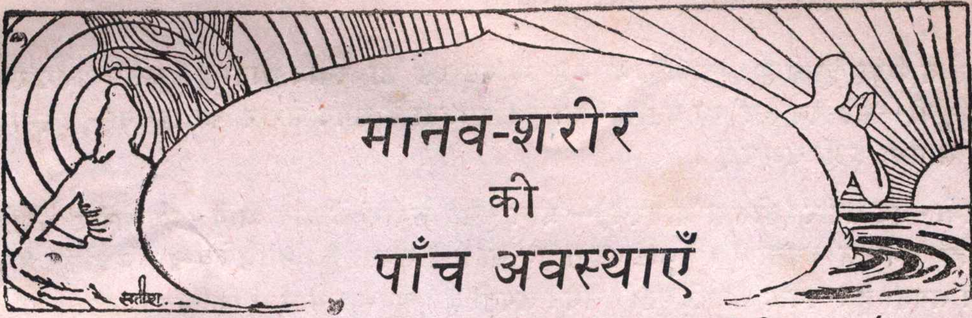

मानव-शरीर की पाँच अवस्थाएँ

● पण्डित रमेशचन्द्र शर्मा, किशनगढ़ (राजस्थान)

अन्न-मय कोश (पहला आवरण)—इसमें जीव का निवास है। **'अन्न - मय कोश'** में आधारित भौतिक शरीर, इस लोक के भोगों को भोगता है। भौतिक शरीर के सुख-दुःख को **'अन्न-मय कोश'**-रूपी पार्थिव शरीर ही अनुभव करता है। इस शरीर का आधार - प्राण, केवल **'अन्न'** है। प्रारम्भिक उन्नत व्यक्ति के लिए **'अन्न-मय कोश की शुद्धि'** आवश्यक है। इसके लिए साधक का भोजन, वातावरण, रहन-सहन शुद्ध होना चाहिए। **'अन्न-मय कोश'** ही प्रारम्भिक भूमिका है, जिसकी शुद्धि के बिना 'साधना' में पैर नहीं रक्खा जा सकता। इसके लिए **सात्विक अन्न, सात्विक वातावरण, प्रारम्भ में कुछ व्रतोपवास** आदि कर्म होने चाहिए तथा इष्ट-मन्त्र के 'जप' का साधन होना चाहिए।

शुद्ध आसन पर बैठने पर, जब साधक 'मन्त्र'-जप करता है और उसकी साधना का प्रारम्भिक काल होता है, तब उसके **शरीर की शुद्धि ईश्वर द्वारा ऊपर से पड़नेवाली दिव्य किरणों से होती है,** जो उसके स्थूल शरीर के बाहरी भागों पर पड़ती हैं। उस समय **प्रथम देवासुर-संग्राम** होता है, जो उसकी साधना का विघटन करता है और पालन भी करता है। अतः मन लगता भी है और उच्चाटन भी होता है। अतः सतत प्रयास द्वारा ही **'अन्न-मय कोश'** की शुद्धि में सफलता प्राप्त होती है। इसके बाद मन अन्तर्मुखी होता है, जो फिर आगे के शरीर में साधक की प्रविष्टि कराता है।

प्राण-मय शरीर (दूसरा आवरण)—'अन्न-मय कोश' के आगे **'प्राण-मय शरीर'** का स्थान होता है। यह शरीर भी इसी शरीर की एक नकल होती है, जो छाया के समान होती है। इसका आधार **'वायु'** होती है और वायु ही जीवन है। 'वायु' के स्तम्भन व कुम्भक से इसकी चञ्चलता मिट जाती है। यह शरीर, 'वायु' पर अधिक आधारित है। इसलिए इस शरीर में प्रविष्ट साधक चञ्चल होता है, उसका 'मन'-'साधना' में बड़ा जल्दी लगता भी है और हटता भी है। **'प्राणायाम' आदि क्रियाओं द्वारा व 'जप' द्वारा इस शरीर की शुद्धि होती है।** 'छाया-पुरुष-सिद्धि' इसी शरीर को वशीभूत करने की सिद्धि है।

'प्राण-मय शरीर' के चारों ओर की धाराएँ अधिकतर काले रङ्ग या धूमिल वर्ण की होती हैं। साधना या ध्यान करते समय, प्रारम्भ में आँखों के सामने जो अँधेरा-सा होता है, वह यही स्पष्ट करता कि साधक का शरीर **'प्राण - मय कोश'** में प्रविष्ट हो रहा है। जब किञ्चित् चमकीला धूमिल प्रकाश दिखाई देता है, तब समझना चाहिए कि साधक का शरीर कुछ आगे बढ़ रहा है। इस शरीर में रहते समय साधक न विशेष आनन्द ही पाता है, न उसे निराशा ही होती है। प्रारम्भ में देह में इतनी थकान आती है कि थोड़ी देर में साधक थक जाता है। देह दर्द करती है। मस्तिष्क गर्म हो जाता है क्योंकि यहाँ 'प्राण'-वायु पर किञ्चित् खिंचाव होता है, जिसके आगे बढ़ने से गुदा - द्वार पर भी दर्द होता है,

संकुचन में तीव्र पीड़ा होती है। कभी-कभी मुँह में 'षट्-रस' का स्वाद आता है। अलग-अलग स्वाद अलग-अलग गुणों—'सत-रज-तम' का प्रतीक होता है। साधना के समय शरीर का हिलना - डुलना भी इस क्षेत्र की साधना के ही लक्षण हैं।

मनो - मय शरीर (तीसरा आवरण)—'प्राण - मय शरीर' के बाद **'मनो - मय शरीर'** में प्रवेश होता है। यहाँ **'मनोबल'** बढ़ता है। भृकुटि पर तनाव-सा होने लगता है। नाभि से खिंचाव होकर **'स्वतः कुम्भक'** होने लगता है। **'स्वतः खेचरी मुद्रा'** लगने लगती है। सुषुम्ना-मार्ग में किञ्चित् स्पन्दन—वायु के गमन का आभास होने लगता है। गुदा-द्वार में बड़ा खिंचाव होता है। हिम्मत से व शनैः-शनैः 'मन्त्र-जप' करते रहने से, 'प्राण'-वायु ऊपर चढ़ता है। आँखें गर्म होने लगती हैं। अनायास 'क्रोध' आता है। बनते काम बिगड़ते हैं क्योंकि अब तक हृत्-कमल का जो मुख नीचे की ओर था, वह ऊर्ध्व - मुखी होने लगता है।

अधो-मुखी हृत्-कमल पर भौतिक जगत् आधारित है एवं ऊर्ध्व-मुखी हृत् - कमल पर दैविक जगत्। अतः जब दैविक जगत् की ओर रुचि होती है, तो यह कमल शनैः-शनै करवट लेता है और जैसे शेष-नाग के करवट बदलने पर भूचाल आता है, वैसे ही हर साधक के भौतिक जगत् में एक भूकम्प-सा आता है। यही परीक्षा की घड़ी है। यहाँ फिर **'देवासुर-संग्राम'** होता है। 'देव'-वाद पर विश्वास बनता है और उठता भी है। **'इष्ट-कृपा'** ही पार लगाती है। **'गुरु-कृपा'** प्रधान है।

साधक का जब यहाँ कुछ 'ध्यान' लगने लगता है, तब **स्वतः मन्त्र - जप** होने लगता है। 'निद्रा'—**'योग - निद्रा'** में बदलने लगती है। प्रारम्भ में, दिन में भी, बात करते - करते तन्द्रा आने लगती है। किञ्चित् **नाद का स्फुरण** भी होने लगता है। अधिक आयास करने पर तीन-चार प्रकार के 'नाद' एक साथ सुनाई देते हैं, परन्तु यह **'एक साथ'** का अनुभव मात्र अनुभूति होती है। वास्तव में उन विभिन्न नादों में समय का सूक्ष्म अन्तर रहता है, 'नाद' का सूक्ष्म स्पन्दन एक मात्रा का ५१२ वाँ भाग होता है।

अब साधना में कुछ **दिव्य ज्योतियाँ** दिखाई देने लगती हैं। पहले 'पृथ्वी'-तत्त्व की लाल, 'अग्नि' की सुवर्ण, 'जल-वायु-आकाशादि' की पीली-हरी-नीली आदि ज्योतियाँ दिखाई देती हैं। **दिव्य आत्माएँ**, जो साधक के गुरु-मण्डल-सम्प्रदाय की होती हैं, उनसे साधक का सम्पर्क—'साधना' व 'स्वप्न' में होने लगता है। 'स्वप्न' में या 'ध्यान' में, मन्त्र-शिक्षा, दीक्षा, अभिषेक आदि भी होते हैं। ध्यानावस्था में साधक कई प्रकार के पशुओं एवं पक्षियों की बोली तक बोलने लगता है अथवा मेढकों की भाँति उछलता है या नाचने लगता है, परन्तु उसे इसका पता नहीं होता। शरीर से दिव्य गन्धादि निकलने की अनुभूति होने लगती है।

'आज्ञा-चक्र' कुछ-कुछ खुलने लगता है। शरीर में दिव्य हल्केपन का अनुभव होने लगता है। इसी प्रकाश में आगे, उस शरीर का प्रतिबिम्ब जैसा कि दर्पण में दिखाई देता है, वैसा ही दृष्टि-गत होने लगता है। शनैः-शनैः इतनी तल्लीनता होती है कि जो काम साधक कर रहा है, वही यह शरीर 'ध्यान' में करता दिखाई देगा। यदि साधक 'आरती' कर रहा है, तो 'ध्यान' में भी उसका पूर्ण शरीर वही करता हुआ दिखाई देगा। यहाँ **'मनो-बल'** बढ़ता है। **'कल्पना-शक्ति'** विशेष जागृत होती है।

यहीं **'मन्त्र-सिद्धि'** की प्रारम्भिक भूमिका बनती है। 'मन्त्र' अब लिखा हुआ दिखाई देता है या **इष्ट-दर्शन** होने लगता है। यहाँ सामान्यतः दो सिद्धियाँ मिलती हैं—**१ रूप-सिद्धि** और **२ स्वरूप-सिद्धि। 'रूप-सिद्धि'** में साधक अपने सूक्ष्म शरीर को कहीं भी भेज कर असम्भव कार्य को भी कर सकता है—दर्शन दे सकता है। **'स्वरूप-सिद्धि'** में अपने आकार को बड़े या छोटे शरीर में किसी को भी दिखा सकता है। इस क्षेत्र में भृकुटी का मध्यम भाग अधिक गति-शील होता है। उसकी क्रिया विशेष बलवती होती है। दिव्य नेत्र खुलने लगता है। मानसिक सङ्कल्प से कई भौतिक एवं आधि-दैविक चमत्कार होने लगते हैं। कभी-कभी शिखा के ऊपरी भाग से भी कुम्भक होता हुआ प्रतीत होगा, जैसे कि कोई वायु को खींच रहा है। 'हृत्' - कमल में गहरा खिंचाव, अश्रु-पात आदि होना इस क्षेत्र के विशेष लक्षण हैं। भूत-भविष्य समझने की कुछ शक्ति आ जाती है।

जो साधक यहाँ आकर अपनी मानसिक शक्तियों का चमत्कार दिखाने लग जाते हैं, उनका पतन शीघ्र ही हो जाता है। वैसे यहाँ से **'सहस्रार'** दिखाई देने लगता है, परन्तु पूर्ण प्रवेश नहीं होता। उसके कुछ कमलों पर अधिकार अवश्य होने लगता है। इसके बाद का क्षेत्र जो आता है, वह **विज्ञान-मय कोश** है।

विज्ञान-मय कोश (चौथा आवरण)—इस क्षेत्र का प्रधान अधिष्ठाता **'विज्ञान - मय शरीर'** है। यहाँ **'बुद्धि'** की प्रधानता रहती है। 'मन' की चञ्चलता यहाँ मिट जाती है। कुछ शान्ति मिलने लगती है। यहाँ 'मन' का विश्राम-स्थान है, परन्तु वास्तव में 'मन' का विश्राम - स्थान **आनन्द - मय कोश** है। यहाँ निर्णय 'बुद्धि' करती है। दिव्य अनुभूतियाँ होने लगती हैं। गुरु के दर्शन एवं अपने शरीर के दर्शन, जो छाया-रूप में पहिले होते थे, अब उनमें दिव्य-रूपता दिखाई देती है। शरीर प्रकाशवान दिखाई देता है। इस शरीर में यह विशेषता होती है कि यह अपनी शक्तियों का प्रदर्शन नहीं करता। यहाँ आकर कभी - कभी साधक को ऐसा अनुभव होता है कि उसकी सब शक्तियाँ समाप्त हो गईं, कुछ भी शक्ति नहीं है।

यहीं पर 'अहं' का मिटना आरम्भ होता है। परम शिव के साथ कुण्डलनी का समन्वय कुछ-कुछ होने लगता है। दर्शन भी होने लगते हैं। **सविकल्प समाधि** भी लगने लगती है, जिसकी पराकाष्ठा **निर्विकल्प समाधि** में होती है। यहाँ **'समाधि'** में साधक बहुत कुछ देखता है, परन्तु जब लौटता है, तो कुछ भी याद नहीं रहता।

आनन्द-मय कोश (पाँचवाँ आवरण)—**'आनन्द-मय कोश'** में प्रविष्ट होने पर जो विशेष परमानन्द प्राप्त होता है, उसको तो विरले ही बता सकते हैं। अब **'समाधि'** के भेद खुलने लगते हैं। मुक्त अवस्था के लिए **'तुरीय अवस्था'** की ओर गमन करता है और यहाँ से फिर मुक्ति की अवस्थाओं के भेद प्रकट होते हैं। **सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य, कैवल्य** आदि मुक्ति की अवस्थाएँ ईश्वरी-प्रसाद से प्राप्त होती हैं और साधक **'सहज समाधि'** में रहकर जीवोपकार करता है।

कालिदास
और
घटकर्पर

—पण्डित श्रीललन पाण्डेय, पटना (बिहार)

'बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी' के प्रमुख सदस्य **जॉन हेवरलिन** ने अपनी पुस्तक **'संस्कृत के कवियों की भावना'** में लिखा है कि **कवि घटकर्पर** 'मातृ-भक्त' था। माता की सेवा से और स्तुति से ही वह विक्रमादित्य के दरबार के नव-रत्नों में एक स्थान पा सके थे। उन नव-रत्नों में—**१ धन्वन्तरि, २ क्षपणक, ३ अमरसिंह, ४ शंकु, ५ वेताल भट्ट, ६ घटकर्पर, ७ कालिदास, ८ वाराह मिहिर** और **९ वररुचि**—ये ही नौ विद्वान् थे। **घटकर्पर** को विद्वान् बनाने तथा दरबार में स्थान दिलाने में **कालिदास** का भी हाथ था। इसके विषय में अंग्रेज विद्वान् **हेवरलिन** ने एक बड़ी रोचक कहानी लिखी है, जिसमें बताया गया है—

महा-कवि कालिदास बिहार-बङ्गाल की सीमा पर अर्थात् 'आसनसोल' के पास किसी स्थान पर कुछ दिनों से टिके हुए थे। वहाँ वे 'देवी की आराधना' कर रहे थे। आराधना में इतने तल्लीन थे कि एक दिन आराधना में समय का ध्यान नहीं रहा। रात हो गई। 'देवी की पूजा-आराधना' समाप्त कर और एक केले के फूल के दोने में देवी का प्रसाद (जो शर्बत के समान था) लेकर, अपने निवास-स्थान की ओर **कालिदास** ने प्रस्थान किया।

अँधेरी रात होने के कारण तथा अधिक रात बीत जाने के कारण, **कालिदास** ने बीच में ही ठहर जाना अच्छा समझा। निकट में एक कुम्हार का निवास-स्थान मिला, जो **घटकर्पर** का ही मकान था। **कालिदास** ने उसी स्थान पर, रात में टिकना निरापद समझा। घर के मालिक **घटकर्पर** को पुकारा और उनसे अपना साधारण परिचय देकर कहा कि 'मैं अपने स्थान को चला जाऊँगा। रात भर मुझे यहाँ ठहरने दिया जाए।'

घटकर्पर ने कहा—मैं जाति का कुम्हार हूँ। मैंने जो बर्तन बनाए थे, वे सब इस समय आवाँ में पकने के लिए डाल दिए गए हैं, इसलिए चारों तरफ मैदान-ही-मैदान है। जहाँ आपको पसन्द आए, उसी स्थान पर अपना आसन लगाकर ठहर जाइए। मुझे कोई आपत्ति नहीं। बर्तन बिखरे होते, तो मुझे कुछ आपत्ति हो सकती थी, किन्तु इस समय सर्वत्र स्थान-ही-स्थान है। जहाँ-कहीं भी मेरी चटाई लेकर बिछा लीजिए।

कालिदास ने **घटकर्पर** की चटाई लेकर बिछा दी और अपना आसन लगा लिया। जब **कालिदास** ने अपना सारा सामान अपने समीप रख लिया, तो 'प्रसाद' वाले दोने को उन्होंने बहुत सँभाल और सहेज कर रखा। इस पर **घटकर्पर** ने उनसे पूछा कि "यह क्या है?" **कालिदास** ने सोचा—'यदि प्रसाद कह देता हूँ, तो यह इसमें से बिना माँगे नहीं रहेगा और इसमें से नहीं देंगे, तो भी अच्छा नहीं होगा क्योंकि इसी की शरण में रात काटनी है।' इसलिए **कालिदास** ने बहाना कर दिया—"यह एक दवा है, जो विषैली है। मैं रोगी हूँ, इसलिए इसे साथ लिए चलता हूँ। आज मैंने दवा खा ली है, कल

के लिए रख छोड़ी है। इसीलिए इसे सावधानी से रख रहा हूँ कि दूसरा कोई जीव-जन्तु इसे पी न ले, नहीं तो उसके प्राण-पखेरू उड़ जायँगे। मेरे लिए तो कोई बात नहीं क्योंकि मैं तो रोगी हूँ।"

घटकर्पर को भी विश्वास हो गया कि ठीक और सच्ची बात कह रहे हैं। अतः इधर-उधर की बातें करके वे भी अपने स्थान पर चले गए।

घटकर्पर के घर में सुबह से ही पति-पत्नी में झगड़ा चल रहा था। **कालिदास** के पास से जब वे अपने घर पहुँचे, तो पत्नी से उनका झगड़ा फिर छिड़ गया। इस बार उसने ऐसा भयङ्कर रूप धारण किया कि **घटकर्पर** ने अपनी पत्नी के सामने ही शपथ में कहा कि 'मैं विष खाकर प्राण दे दूँगा।' ऐसा कहकर वे उसी रात में, जहाँ **कालिदास** सोए हुए थे, उसी स्थान पर वापस आ गए और उन्होंने जिस प्रसाद के दोने को विष भरा हुआ बताया था, उसे उठाकर चुपके से पी गए।

अब **घटकर्पर** ने सोचा कि "मैं तुरन्त मरूँगा, इसलिए जीवन की अन्तिम घड़ी में भगवान् की कुछ स्तुति कर लूँ।" लगे **कालिदास** के समीप ही बैठकर भगवद्-स्तुति करने। उनकी आवाज सुनकर **कालिदास** की नींद टूटी। उन्होंने पूछा—"क्या बात है कि आप अभी ही उठकर बैठ गए?"

घटकर्पर ने सोचा, 'जीवन का आखिरी क्षण है, इसमें झूठ बोलना पाप है।' अतः उन्होंने सच्ची बात कह सुनाई। **कालिदास** ने जब यह सुना कि दोने का प्रसाद, जिसे मैंने 'जहर' बताया था, यह पी गया, तब उन्होंने **घटकर्पर** को कुछ न कहकर अपने भाग्य को ही कोसना शुरू किया। उन्होंने **घटकर्पर** से कहा—"बन्धुवर, तुम बड़े भाग्य-शाली हो, तुम मरोगे नहीं। अब तुम विद्वान् बनकर जिओगे। मैंने तुमसे बहाना किया था। वह विष नहीं, देवी का प्रसाद था, जिसके लिए मैंने महीनों से आराधना की थी। देवी ने प्रसन्न होकर अपने हाथों से उठाकर मुझे दिया था। मैंने कल प्रातः उसे ग्रहण करने का निश्चय किया था, किन्तु अब तुम्हारी बुद्धि विमल हो जायगी। जो कुछ भी पढ़ोगे, तुरन्त बुद्धि उसे ग्रहण करेगी। इसलिए आज से तुम पढ़ना शुरू करो।"

कालिदास ने घटकर्पर को अक्षरों का ज्ञान करा दिया। उसके बाद से **घटकर्पर** ने पढ़ना शुरू किया, तो एक प्रसिद्ध कवि बन गए। **कालिदास** ने उन्हें अपना सहयोगी बनाया क्योंकि उन्हें भी अपनी स्त्री के फटकारने पर ही ज्ञान-प्राप्ति हुई थी। दोनों **'देवी'-भक्त** भी थे। **कालिदास** ने ही **घटकर्पर** को विक्रमादित्य के दरबार में स्थान दिलाया तथा **देवी की आराधना** और **मातृ-भक्ति** ने **घटकर्पर** के मस्तिष्क को तीव्र से तीव्र बना दिया।

* * *

(पृष्ठ १३६ का शेष)

शाश्वत कर्म-बीज हो
तुझे देखता हूँ उठते हुए
कृषक के हाथों में उठती कुदाल पर !!
सत्यार्थी की आँखों में
प्रभा-प्रभात की झिलमिल-सी,
तुझे देखता हूँ कौंधकर
तड़पते हुए तड़ित-सी
गिराते हुए गाज
एक हरी-भरी डाल पर।
गहन चतुर्दिक् चिर-व्याप्त अँधेरे में
खड्ग की चमक
इन आँखों में रोशनी दे
कि स्तम्भित पशु-भाव हों
सुनकर हुङ्कार तेरे।।
काल के खप्पर से
प्यार तेरा वितरित हो
जो तृषित मानवता को रसना की तृप्ति दे।
कितना सन्त्रस्त है, नश्वर संसार यह
वर-अभय-मुद्रा में प्राणों को त्राण दो
भुक्ति-भव-मुक्ति दो !!

ॐ तत् सत्।।

तुझे देख माँ कालिके !

* पण्डित बलराम दुबे, ७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ

तुझे देख माँ कालिके !
लेती है जन्म
हृदय में स्पर्श की लाजवन्ती चाह,
एक थिरकन, एक सिहरन
अविद्या को विद्या की
प्राण-मयी रोशनी की चाह।
उस लोल लप-लपाती हुई 'लौ' में
देखें हम काल-जयी काली का आगमन
स्पर्श की आँच में जीवन का स्पन्दन
रुकी हुई छाती में सुनें हम
साँसों का कदम-ताल
प्राणों का अभिनन्दन !
काल के चक्र को थामे हुए वक्ष पर
पिरोएँ हम
स्वर और व्यञ्जनों की मालिका।
टूटे हुए मनकों में खोजें हम
हनुमत् की छाती में सीता और राम
शब्दों के पार रहस्य-मय ज्ञान
भरें हम दम्भ के बिखरे हुए टुकड़ों में
प्रेम और भक्ति का शाश्वत निधान !
देखें हम काली के
काल-श्री विग्रह में
लेता हुआ जन्म
चिन्मय प्रकाश
पाएँ हम काल-निशे
उज्ज्वल प्रकाश में आत्म-रूप दर्शन ।।
लहरें विमुक्त तेरे केश
दसों दिशाओं में स्वच्छन्द
कि न छिप सके मुण्ड
न भाग सके चण्ड
पशु-वत् भावों का शाश्वत बलिदान
तुझे अर्पित हो कालिके !
अन्त-हीन तृष्णा की फैलती विष-बेल में
रोकें कुकर्मों का बढ़ता विस्तार।
मानस के स्याह अँधेरे में
उठो अदृश्या तुम
कि पी सको अहं की रक्त-बीजी बाढ़ !
ठोक सको ताल
हर युद्ध के अन्त में
कि तन्द्रा के टूटने पर
देखे जब शुम्भ तुझे
चीख उठे
कि इतनी भयावह मुझे मौत न दे दुर्गे !
गहन अँधेरे के
अन्त-हीन गर्भ में
घुसने से अच्छा है, मरूँ मैं
उदित उजाले के स्वर्णिम प्रकाश में !!
और तुम शुम्भ की अन्तिम इच्छा की तरह
निगल लो स्वयं को !!
तुझे देखता हूँ, कालिके !
उदय की लालिमा में
अहं को निगलते हुए
जहाँ से निकली हो स्वयम्भू
फिर वहीं वापस
तुझे देखता हूँ लौटते हुए !
नित्य नई कल्पना की डोर पर
उतरती हो जगती पलकावलि पर
तुझे सुनता हूँ
गूँजते हुए उठते आह्वान पर
बजते शङ्ख-नाद पर ।।
तनते हुए देखता हूँ
धनञ्जय धनु-डोर पर। [शेष पृ० १३५ पर]

'सनातन धर्म' की व्यापकता

• 'कुल-भास्कर' पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

यदि चिर-सत्य और **'सनातन धर्म'** को एक विशाल वृक्ष के रूप में देखा जाय, तो उसका सार्व-भौम स्वरूप सुगमता से समझ में आ जायगा और उसके लिए **'कल्प - वृक्ष'** की उपमा समुचित जान पड़ेगी। **'धर्म' एक ही है, वह अनन्त होने पर भी अनेक नहीं है। सर्व - व्यापक, सर्व-जीव-हितकारी, सर्व-शक्तिमान् श्री भगवान् के समान 'धर्म' भी सर्व-व्यापक, सर्व-जीव-हितकारी और सर्व-शक्ति-मान् है।** वह साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप है।

हमारे प्राचीन शास्त्रों में उक्त **विश्व-व्यापक धर्म** के लिए केवल **'धर्म'** शब्द ही व्यवहृत हुआ है! **वैदिक धर्म, सनातन धर्म, हिन्दू - धर्म, आर्य - धर्म** आदि नाम, अन्य उप-धर्मों से इसकी विशेषता दिखाने के लिए कल्पित हुए हैं। जगत् के सब उप - **धर्मों** का बीज इसमें विद्यमान है और उन सबका इसमें समावेश हो जाता है। यह बात इसके अङ्गोपाङ्गों पर दृष्टि डालने से ध्यान में आ जायगी।

'धर्म' का लक्षण नाना महर्षियों ने नाना प्रकार बताए हैं, परन्तु सर्व-वादि-सम्मत यही लक्षण माना गया है कि—**जड़ या चेतन किसी भी पदार्थ में जिस शक्ति के न रहने से, उस पदार्थ की सत्ता ही नहीं रहती, उस शक्ति का नाम 'धर्म' है।** अथवा **जो अलौकिकी ईश्वरेच्छा-रूपिणी महा-शक्ति इस जगत् को धारण किए हुए है, वही 'धर्म' है।**

इसका व्यावहारिक स्वरूप इस प्रकार बताया जा सकता है कि—**जो पुरुषार्थ सत्त्व - गुण को बढ़ानेवाला हो, वही 'धर्म' है।** 'धर्म' ही शारीरिक, वाचनिक और मानसिक कर्मों के द्वारा, मनुष्यों में सात्विक गुण की अभिवृद्धि कराता है। 'धर्म' के द्वारा यह परम-कल्याणकर महान् कार्य कैसे होता है, यह जानने के लिए एक प्रकाण्ड **'कल्प-वृक्ष'** को अन्तश्चक्षुओं के सामने ले आइए और गम्भीरता के साथ विचार कीजिए। मान लीजिए कि इस **'कल्प - वृक्ष'** के मूल में आदि - शक्ति चिन्मयी श्री जगदीश्वरी विराज रही हैं। वे ही 'बीज-भूता' हैं। 'विश्व-धारक धर्म' इसका तना है। १ यज्ञ, २ दान और ३ तप— ये त्रि-विध कर्म, जो अत्यन्त पावन और अत्याज्य कहे गए हैं, इस वृक्ष के तीन प्रधान स्कन्ध (शाखाएँ) हैं। इनको आप **'धर्माङ्ग'** भी कह सकते हैं।

दान-धर्म के तीन भेद हैं—**१ अभय-दान** (जिसमें दीक्षा-दान भी सम्मिलित है), **२ विद्या-दान** और **३ अर्थ-दान** (जिसमें धन, अन्न, भूमि आदि अर्थ सम्मिलित हैं)। इन तीनों दानों में से, प्रत्येक के सत्त्व, रज और तमो-गुण के अनुसार, तीन-तीन भेद होने से, समूचे दान-धर्म के भेद नौ होते हैं। ये उस स्कन्ध या शाखा की डालें हैं, प्रशाखाएँ हैं।

'धर्म-वृक्ष' के दूसरे स्कन्ध या अङ्ग का नाम है—**तपोधर्म**। शारीरिक, वाचनिक और मानसिक शक्तियों का संयम कर, शीतोष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करने का नाम **'तप'** है। इसके भी तीन भेद हैं—**१ शारीरिक तप, २ वाचनिक तप** और **३ मानसिक तप। 'तप'** के इन तीन अङ्गों के सत्त्व, रज और तमो-गुण के अनुसार, तीन-तीन भेद होने से, **'तप'** के भी नौ भेद होते हैं।

'धर्म-वृक्ष' का तीसरा अङ्ग **यज्ञ-धर्म** है। इसके अनेक अङ्ग होने पर भी, प्रधान अङ्ग तीन ही हैं—**१ कर्म-यज्ञ, २ उपासना-यज्ञ** और **३ ज्ञान-यज्ञ।**

कर्म-यज्ञ के प्रधानतः छः भेद हैं—१ **नित्य-कर्म** (सन्ध्या-वन्दन आदि), २ **नैमित्तिक कर्म** (तीर्थ-यात्रा आदि), ३ **काम्य-कर्म** (पुत्रेष्टि-याग आदि), ४ **आध्यात्मिक कर्म** (देश-सेवा, समाजोपकार आदि), ५ **आधि-दैविक कर्म** (वास्तु-याग आदि) और ६ **आधि-भौतिक कर्म** (ब्राह्मण - भोजन आदि)। इन छहों अङ्गों में से प्रत्येक के सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भावों के अनुसार, तीन-तीन भेद होने से, **'कर्म-यज्ञ'** के अठारह भेद होते हैं।

उपासना-यज्ञ बहुत विस्तृत है। इसके भी अनेक भेद होते हैं, परन्तु मुख्य भेद पाँच ही हैं—**१ निर्गुण ब्रह्मोपासना, २ सगुण पञ्चोपासना, ३ लीला-विग्रह** (अवतार) **उपासना, ४ ऋषि, ५ देवता और पितरों की उपासना तथा क्षुद्र देवताओं, भूत - प्रेतादि की उपासना।** इन उपासनाओं की साधन-पद्धति के अनुसार चार अन्य भेद होते हैं—१ **मन्त्र-योग-विधि** (इसमें स्थूल - मूर्ति का ध्यान किया जाता है), २ **हठ-योग-विधि** (इसमें ज्योति का ध्यान विहित है), ३ **लय-योग-विधि** (इसमें विन्दु - ध्यान का महत्त्व है) और ४ **राज-योग-विधि** (इसमें निर्गण ब्रह्म के ध्यान में निमग्न होना पड़ता है)। इन नवों अङ्गों के सत्त्व, रज, तमो-गुण के अनुसार तीन-तीन भेद होने से **उपासना-यज्ञ** के सब मिलाकर सत्ताइस भेद होते हैं।

'ज्ञान-यज्ञ' के प्रधानतः तीन अङ्ग हैं—१ **श्रवण** (शास्त्र-द्वारा और गुरु-मुख से), २ **मनन** (ज्ञान-भाव का) और ३ **निदिध्यासन** (ज्ञान-भाव में)। इन तीनों अङ्गों में से प्रत्येक के सत्त्व, रज और तमो-गुण के अनुसार तीन-तीन भेद होने से 'ज्ञान-यज्ञ' के नौ भेद होते हैं।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार **'धर्म' के प्रधानतः चौबीस भेद** होते हैं। वे ही विश्व-धारक **धर्म-कल्पद्रुम** के तीन स्कन्धों की चौबीस शाखाएँ हैं और त्रिगुण से उनकी बहत्तर प्रशाखाएँ हो जाती हैं। यथा—तीन स्कन्धों में से **'दान' के तीन, तप के तीन, यज्ञान्तर्गत कर्म के छः, उपासना के नौ** और **ज्ञान के तीन**—इस प्रकार २४ भेद होते हैं। इनमें से प्रत्येक के त्रिगुणों के अनुसार तीन-तीन भेद होने से, सब मिलाकर ७२ भेद हो जाते हैं। अन्ततः यह विश्व-धारक **'धर्म-कल्पद्रुम'** बहतर शाखा-प्रशाखाओं में फैला हुआ है और इसी की शान्ति-मयी, शीतल-छाया में जगत् की मानव-जाति विश्राम कर, अपार सुख का अनुभव कर रही है।

'धर्म-पालन' के साधारणतः चार रूप हैं—**१ साधारण धर्म, २ विशेष धर्म, ३ आपद्-धर्म** और **४ असाधारण धर्म।**

दान, तप, यज्ञ, सत्य, धृति, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह, परोपकार आदि **'साधारण धर्म'** के अन्तर्गत हैं। क्या हिन्दू, क्या जैन, क्या बौद्ध, क्या ईसाई, क्या मुसलमान—सभी के लिए ये समान रूप से उपकारी और आदरणीय हैं।

'विशेष धर्म' विशिष्ट व्यक्ति या समाज के लिए होता है। जैसे 'स्त्री-धर्म' और 'पुरुष-धर्म' में अथवा 'संन्यास-धर्म' और 'गार्हस्थ्य-धर्म' में अन्तर है। इसी प्रकार ब्राह्मण - धर्म, शूद्र - धर्म, शैव - धर्म, शाक्त-धर्म, जैन-धर्म, बौद्ध-धर्म, ईसाई-धर्म, इस्लाम-धर्म आदि सभी 'विशेष धर्म' के अन्तर्गत हैं।

संक्षेप में **'साधारण धर्म'**, मनुष्य मात्र के लिए उपकारक है और **'विशेष धर्म'** विशिष्ट अधि-कारी का ही हित करता है।

'आपद्-धर्म' विपत्ति के समय में काम आता है।

'असाधारण धर्म' का अधिकार विलक्षण है। उसको असाधारण शक्ति-शाली व्यक्ति ही, उपयोग में ला सकता है।

संसार में इस समय जितने **'धर्म'** और **'सम्प्रदाय'** प्रचलित हैं, ध्यान-पूर्वक उन पर दृष्टिपात करने से यही विदित होगा कि वे सब इसी विश्व-व्यापक **'सनातन धर्म'** के किसी एक या एकाधिक अङ्गों को लेकर प्रतिष्ठित हुए हैं। **'सनातन धर्म'** उनका पितृ-स्वरूप है। वह उन्हें अपने अङ्गोपाङ्ग, परिवार, कुनबा ही समझता है। इसी से वह किसी **धर्म** या **सम्प्रदाय** का विरोध नहीं करता। इस सम्बन्ध में कुछ विस्तार से विचार करना उचित होगा।

'सनातन धर्म'-रूपी कल्प-वृक्ष की किसी शाखा या प्रशाखा की छाया के आश्रय से जगत् के सब धर्म प्रवर्तित हुए हैं और तदनुसार ही उनके द्वारा धर्म के अन्तिम लक्ष्य-रूपी मुक्ति-भूमि में परम्परा-रूप से जीवों की गति होती है। जिस प्रकार नदियों की गति सीधी या टेढ़ी-मेढ़ी होने पर भी उनका लक्ष्य समुद्र में मिलना ही होता है, उसी प्रकार सभी धर्म अद्वितीय परमात्मा की ओर मुमुक्षु को ले जाते हैं। पथ भिन्न-भिन्न होने पर भी सबका लक्ष्य एक ही है। मूल वृक्ष में जो उपादान रहता है, उसी का विस्तार शाखा-प्रशाखाओं में हो जाता है। इसी नियम के अनुसार **'सनातन-धर्म'** के अनन्त अधिकारों में से किसी एक या एकाधिक अधिकारों का समावेश जगत् के सब धर्मों में दीख पड़ता है।

ईसाई, यहूदी और मुहम्मदी धर्म-मत ईश्वर को निराकार कहकर उसके अनेक क्रिया-कलापों का भी वर्णन करते हैं। जैसे—ईश्वर सृष्टि-स्थिति-प्रलय का कर्ता है और जीवों के पाप-पुण्यात्मक कर्मानुसार उन्हें नरक या स्वर्ग प्रदान करता है। हिन्दू-धर्म में ये सब ईश्वरीय शक्तियाँ मानी गई हैं। सृष्टि-कारिणी शक्ति का नाम **'ब्रह्मा'**, स्थिति-कारिणी शक्ति का नाम **'विष्णु'**, प्रलय-कारिणी शक्ति का नाम **'महेश'** और जीवों के पाप-पुण्यों का फल प्रदान करनेवाली शक्ति का नाम **'यम'** या **'धर्म-राज'** है। उक्त धर्म-मतों का ईश्वर-ज्ञान **'सनातन-धर्म'** के ब्रह्म, ईश्वर और विराट् के 'तटस्थ' एवं 'स्वरूप' लक्षणों से न मिलने पर भी निराकार, सर्व-व्यापक आदि रूपों में उसका आभास मिलता है। एक ही निश्चित दन में जीव-मात्र के पाप-पुण्य का निर्णय कर देने के विश्वास में विचार की असम्पूर्णता दीख पड़ती है, परन्तु ये सब बातें पूर्व-कथित ७२ धर्माङ्गों में से **'तामसिक ब्रह्मोपासना'** के अन्तर्गत आ जाती हैं।

बौद्ध और जैन आचार्य **'अवतार'** को पूर्ण मानव कहते हैं। **'सनातन-धर्म'** के ७२ अङ्गों में से **'लीला-विग्रह-उपासना'** के ये 'राजसिक' और 'तामसिक' स्वरूप हैं। 'तीर्थङ्कर' और 'बुद्ध' शब्दों से ही यह स्पष्ट हो जाता है। ईश्वर-तत्त्व का यथार्थ स्वरूप विदित न होने से रूपान्तर से उन्होंने 'अवतार-तत्त्व' को स्वीकार किया है, परन्तु हैं वे **'सनातन-धर्म'** के ही अनुगामी। **'कर्म-विज्ञान'** को, जिसका विस्तार **'सनातन-धर्म'** में अत्यधिक है, बौद्ध और जैन दोनों मानते हैं। हिन्दुओं की तरह देव-जगत् पर भी वे विश्वास रखते हैं। धर्म-शास्त्रोक्त मन्त्र, हठ, लय और राज-योग के क्रिया-सिद्धान्तों को दोनों मानते हैं। बौद्धों का 'ज्ञान-काण्ड' आर्यों की 'सप्त-ज्ञान-भूमियों' से मिलता-जुलता है। वे 'वर्णाश्रम' नहीं मानते, परन्तु संन्यास को विशेष महत्त्व देते हैं।

'सनातन-धर्म' ने उपासना-राज्य में अपूर्व उदारता दिखाई है। उसमें अधिकार-भेदानुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वृक्ष, सर्प, प्रेत, मृतात्मा, वीर-पुरुष, पिशाच, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व, देव, ऋषि, पितर, अवतार, विष्णु-शिवादि सगुण ब्रह्म की उपासना से लेकर अन्त में अद्वितीय, नाम-रूप-रहित, निर्गण

ब्रह्मोपासना तक की विधि बताई गई है। संसार के सब धर्मों के अनुयायी इसमें अपने-अपने अधिकारानुसार उपासना के विषय अन्तर्भूत देख सकते हैं। **'सनातन-धर्म'** के भक्ति-मार्ग में तो ईसाई, मुसलमान आदि भी भक्ति-सम्बन्धी अपने-अपने सिद्धान्तों को पा जाएँगे। 'पर - लोक' तथा 'पुनर्जन्म' के विषय में बौद्ध, जैन, पारसी आदि अपने धर्म-मतों की **'सनातन-धर्म'** के साथ वैज्ञानिक एकता देख सकेंगे।

पारसी, ईसाई, यहूदी, मुसलमान आदि 'पापी आत्मा' और 'पुण्यात्मा' में चिर-विरोध मानते हैं। इसका अति विस्तृत विज्ञानानुकूल वर्णन 'स्थूल-सूक्ष्म-कारण' जगत् में देवासुरों के नित्य-संग्राम-रूप से **'सनातन-धर्म'** के शास्त्रों में पाया जाता है। दैव-जगत् के वर्णन-प्रसङ्ग में स्वर्ग और नरक तथा उन्नति और अवनति के नाना स्तरों का वर्णन शास्त्रों में किया गया है। अन्य धर्मों में पुण्य का पुरस्कार और पाप का दण्ड पाने के लिए मृत्यु के अनन्तर विचार का एक ही दिन बताया गया है। इसी संकुचित सिद्धान्त का वैज्ञानिक विस्तृत वर्णन उक्त शास्त्रों में किया गया है, जिसके अनुसार जीव को मृत्यु के पश्चात् शुभाशुभ प्राक्तन वेग से अनेक उन्नत तथा अवनत लोकों में सुख - दुःख भोगने के लिए जाना पड़ता है। इस प्रकार अन्यान्य धर्म-मतों के साथ अनेक वैज्ञानिक विषयों की एकता देखने में आती है।

'चण्डी' मासिक पत्रिका

को

आजीवन सदस्यता

'चण्डी' मासिक पत्रिका का प्रकाशन पिछले ५० वर्षों से प्रति-मास अधिक-से-अधिक उपयोगी रूप में हो रहा है। **'प्रकाशन - कार्य' की सुविधा** की दृष्टि से, **'चण्डी'** मासिक पत्रिका की **'आजीवन सदस्यता'** की योजना बनाई गई है। सम्पन्न पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि—

(१) पाँच सौ पचास रु० (५५०-०० रु०) **बैङ्क ड्राफ्ट मनीआर्डर/पोस्टल** आर्डर द्वारा भेजकर **'चण्डी' के आजीवन सदस्य** बनने की कृपा करें।

बैङ्क ड्राफ्ट **'कौल-कल्पतरु' चण्डी, इलाहाबाद** के नाम तथा पोस्टल आर्डर—**ऋतशील शर्मा, चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद** के नाम बनवाने की कृपा करें।

(२) यदि ५५०-०० रु० एक साथ भेजना सम्भव न हो, तो दो या तीन किश्तों में सदस्यता धन-राशि भेजने की कृपा करें।

'चण्डी' के **'आजीवन-सदस्य'** को **'चण्डी'** जीवन-पर्यन्त, जब तक **'चण्डी'** प्रकाशित होती रहेगी, प्रति-वर्ष भेजी जाएगी।

विशेष—'चण्डी' की विशेषाङ्क-योजना के अन्तर्गत वर्ष में चार-पाँच विशेषाङ्क प्रकाशित होते हैं। ये विशेषाङ्क **'आजीवन सदस्य'** को **रियायती मूल्य की वी० पी०** द्वारा भेजे जाएँगे।

'मां भद्रकाली प्रतिष्ठान', इटखोरी

बचपन से ही **'भदुली जाने'** का प्रसङ्ग सुनता आया—गया भी होगा, किन्तु अब तो संस्कृत-रूप में **'भद्र-काली'** की महिमा देश-विदेश में व्याप्त हो रही है। **'माँ भद्र-काली'** का उल्लेख तन्त्र-ग्रन्थों में बारम्बार आया है—

विद्या - स्वरूपा दुर्लभ - सिद्धि - दात्री, शुद्धात्म-ज्ञान-प्रदात्री महा-शक्तिः।

भद्रं शुद्धात्म-विज्ञानं भद्र-लोकानुरूपं, मङ्गलं कलयति जनयतीति भद्र-काली !

'अथर्व-वेद' में इन्हें **योग-देवी परा-शक्ति** से अभिन्न माना गया है—

अदितिर्ह्यजनिष्ठ दक्षया दुहिता तव तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृत - बान्धवः ततो देवी भद्र-काली समभवत्।

'माँ भद्र-काली' के 'ध्यान'-स्तोत्र में है—

तां भद्र-कालीं तपसा ज्वलन्तीं, माहेश्वरीं शुद्धमह-प्रतिष्ठाम्।
शुद्धात्म-कल्याण-गुणत्व-भावां, वन्दे सदा चेतसीं भद्र-कालीम्॥
नमस्ते सिद्ध - सेनानि, आर्ये मन्दर-वासिनि !
कुमारि कालिका-पालि, कपिले कृष्ण-पिंगले !
भद्र-कालि नमस्तुभ्यं, महा-कालि नमोऽस्तु ते।

मन्दिर-प्रतिष्ठान में माँ की मूर्ति के चरणों में नीचे सम्भवतः पाली भाषा में कुछ खुदा हुआ है। कुछ दूर उत्तर में सेमल वृक्ष के नीचे सहस्र - शिव - लिङ्ग की मूर्ति अति प्राचीन है। सामने ही विशाल-काय नन्दी के दर्शन होते हैं। पश्चिम में पद्मासन-स्थित महात्मा बुद्ध की प्रतिमा है।

छोटा नागपुर के इस मनोरम वनाञ्चल में, ग्राण्ड ट्रङ्क रोड को छूता चौपारण-चतरा मार्ग है। चौपारण थाने से १५ किलोमीटर पर **'इटखोरी'** है और निकट ही हमारा गाँव **'देहर'**। **'माँ भद्र-काली'** दो नदियों—**'महानदे'** (महाने) और **'बकसा'** के सङ्गम पर स्थित तीर्थ है। वैसे ही, जैसे हजारीबाग जिले में ही **'रजरप्पा, माँ छिन्नमस्ता का मन्दिर'**, **'भैरवी'** नदी और **'दामोदर'** नद के सङ्गम पर।

'भद्र-काली माँ' के परिसर में बुद्ध की मूर्ति को देखकर जिज्ञासा होती है कि क्या यह स्थान भी **महात्मा बुद्ध की तप-स्थली** रहा है ! **बोधगया** यहाँ से ४० किलोमीटर दूर है। कहते हैं कि बोधगया जाने के पहले सिद्धार्थ यहाँ तप-रत थे, जब उनकी माँ उन्हें मनाकर, वापस ले जाने आई थीं, किन्तु ज्ञान - तट पर पहुँचनेवाले सिद्धार्थ ने अपनी माँ का अनुरोध नहीं रखा। उनकी माँ यह कहते रोती लौटीं—**'इत खोई'**। कदाचित् **'इत खोई'** ही बाद में **'इठखोरी'** हो गया। अभी भी यदा-कदा **'इतखोरी'** लिखा जाता है।

निकट ही **'तमासीनका गुफा'** है। यहीं कहीं **सप्तशती-चर्चित मेधा ऋषि** का आश्रम था, ऐसा कहते हैं। इस गुफा का रहस्य अभी भी अज्ञात है। भारी ढलान से भीतर गुफा में, जहाँ तक सम्भव है, टार्च या दिए की बत्ती की सहायता से लोग जाते हैं, किन्तु प्रकाश कहीं बुझ जाता है और लौट आना पड़ता है। इन दिनों **'तमासीन'** पर्यटन-स्थल का रूप ले रहा है—सैलानियों के लिए जङ्गल में मङ्गल मनाने की जगह !

कुछ पास ही **कोलुआ पहाड़** है, जहाँ विख्यात **'माँ कौलेश्वरी'** का मन्दिर काफी सीढ़ियाँ चढ़ कर पहुँचा जाता है। महीनों मेला लगता है। खेल-तमाशे होते हैं। घरेलू पशुओं की खरीद-बिक्री होती है। पहले यहाँ पूजन-मुण्डन प्रधान पर्व थे। अब तो 'विवाह'-अनुष्ठान विशाल संख्या में होने लगे हैं। **'माँ कौलेश्वरी'** की कृपा अनन्त है। **'कोलुआ'** पर्वत और **'कौलेश्वरी माँ'** नाम से **'कुल'** या **'कौल'** का बोध होता है।

दक्षिण पठार की पहाड़ी श्रेणियाँ और उत्तरी सीमा पर विस्तृत फैलाव में प्रसिद्ध एवं भयङ्कर **'दनुआ-भलुआ'** जङ्गल ! आरोग्य-दायक जलवायु से सिक्त, यह छोटा नागपुर का वनाञ्चल अब अशान्त भी हो चला है, किन्तु हर जगह माँ के किन्हीं रूप की उपासना, उनके नाम का भजन-कीर्तन दिन-रात वातावरण को स्नेह-स्निग्ध बनाए रहता है। इस पर सिरमौर की भाँति कई वर्षों से प्रयास चल रहा है—**'इठखोरी'** के **'माँ भद्र-काली कालेज'** को स्थापित करने का। हाल ही में मुझे इस महा - विद्यालय के एक अनुष्ठान में शामिल होने का अवसर मिला। चार घण्टे के उस कार्य-क्रम में उच्च कोटि की प्रतियोगिता, वाद-विवाद, कविता, व्यङ्ग, प्रहसन—हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू के **शेर-शायरी से ओत-प्रोत** सञ्चालन अविस्मरणीय बन कर रह गया।

इस पिछड़े वनाञ्चल में महा-विद्यालय—स्थान की कमी, किन्तु प्राध्यापकों के त्याग की अधिकता—छात्रों से अधिक छात्राओं का उच्च शिक्षा के प्रति आग्रह ! आश्चर्य हुआ कि लगभग १०० छात्राएँ कालेज में पढ़ रही हैं, दूर से आती हैं। अनुशासित और अति प्रशंसनीय वातावरण में कालेज के अधिकारी-गण बड़ी असुविधा से चला रहे हैं अब तक। देखें, कितना ध्यान शासन का इस श्लाघ्य प्रयास की ओर जाता है।

—श्री रणवीरप्रसाद, अवकाश-प्राप्त मुख्य आयुक्त आय-कर, बङ्गाल

कौल-कल्पतरु चण्डी

'चण्डी' मासिक पत्रिका की विशेषता यह है कि यदि आप इसे ध्यान से पढ़ने की कृपा करेंगे, तो **'हिन्दू-धर्म' के 'व्यावहारिक पक्ष'** को समझने में बड़ी सरलता होगी। 'हिन्दू-धर्म' केवल एक सिद्धान्त या दर्शन मात्र नहीं है। उसका **क्रियात्मक पक्ष** भी है और वही वास्तविक महत्त्ववाला है।

'चण्डी' आपको अपने 'हिन्दू-धर्म' के क्रियात्मक पक्ष का पालन करने में कितनी सहायता दे सकती है, यह तो आप इसे अपना कर स्वयं ही समझ सकते हैं। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि जिसने भी **'चण्डी'** को ध्यान से जैसे ही देखा है, वह उसी समय से **'चण्डी' का स्थायी ग्राहक** बन गया।

अतः अपने शहर के समाचार-पत्र-विक्रेताओं से **'चण्डी' मासिक पत्रिका** की आज ही माँग कीजिए अथवा हमें लिखिए—**'चण्डी'-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-२११००६**

स्वर-योग

[गताङ्क से आगे]

श्री सन्तोषकुमार सोनी, सागर (म० प्र०)

[**'स्वरोदय - विज्ञान'** परम दया - मय भगवान् सदा-शिव का अद्भुत प्रसाद है, जिसके द्वारा निर्बल, निःसहाय, निःसङ्ग, अज्ञानी और अशक्त व्यक्ति भी भोग और मोक्ष सहित समस्त प्राप्तियों का अधिकारी हो सकता है। पिछले अङ्कों द्वारा स्वरों का उदय-अस्त और उनके मध्य तत्त्वों की स्थिति का वर्णन, 'स्वर' में तत्त्वों के उदय-अस्त के ज्ञान का वर्णन हो चुका है। अब पञ्च-तत्त्वों—**१ पृथ्वी-तत्त्व, २ जल-तत्त्व, ३ अग्नि-तत्त्व, ४ वायु-तत्त्व** एवं **५ आकाश-तत्त्व** की **'ध्यान' - विधि** बताई जा रही है। पञ्च-तत्त्वों का **निवास, लोक, रङ्ग, आकृति, गुण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, विकार** का विवरण भी यहाँ प्रस्तुत है। जिज्ञासु बन्धु इसे ध्यान से पढ़कर, अभ्यास कर लाभ उठाएँगे, ऐसी आशा है।—सं०]

पञ्च-तत्त्वों की ध्यान-विधि

'पृथ्वी'-तत्त्व का निवास **'मूलाधार-चक्र'** है। यह चक्र **'भू-लोक'** का स्वामी है। 'पृथ्वी'-तत्त्व का रङ्ग **पीला** और आकृति **चतुष्कोण** है। इसका गुण **गन्ध** है, ज्ञानेन्द्रिय **नासिका** तथा कर्मेन्द्रिय **गुदा** है। शरीर में **पाण्डु, कामला** आदि रोग इसी तत्त्व के विकारों से उत्पन्न होते हैं। **भय** आदि मानसिक विकारों में भी इसी तत्त्व की प्रधानता रहती है। 'पृथ्वी'-तत्त्व-जन्य विकार **'मूलाधार - चक्र'** में ध्यान करने से शान्त हो जाते हैं।

ध्यान-विधि—एक पहर रात रह जाने पर, शान्त पवित्र स्थान में, ऊन के आसन पर **'वज्रासन'** से बैठकर—दोनों पैरों को पीछे की ओर मोड़कर उन पर बैठ जाए। दोनों हाथ उल्टे करके घुटनों पर इस प्रकार रखे कि अँगुलियों के सिरे पेट की ओर रहें। तब नासाग्र पर दृष्टि रखते हुए **'मूलाधार-चक्र'** में—**लं-वीजां धरणीं ध्यायेच्चतुरस्रां सु-पीतभाम्। सुगन्ध-स्वर्ण-वर्णत्वमारोग्यं देह - लाघवम्॥**

अर्थात् **'लं'** वीज वाली, **'चौकोर', पीली पृथ्वी** का 'ध्यान' करे। इस प्रकार करने से नासिका सुगन्ध से भर जाएगी और शरीर स्वर्ण के समान वर्ण-वाला तथा नीरोग हो जाएगा। ध्यान करते समय 'पृथ्वी'-तत्त्व के विभिन्न गुणों का स्मरण करते हुए, **'लं'** वीज का यथा - शक्ति 'जप' करना चाहिए।

'जल'-तत्त्व का निवास **'स्वाधिष्ठान'-चक्र** है। यह चक्र **'भुवः'-लोक** का स्वामी है। 'जल'-तत्त्व का रङ्ग **श्वेत**, आकृति **अर्ध-चन्द्राकार** होती है। इसका गुण **रस** है और कटु, तिक्त, कषाय तथा अम्लादि सभी रसास्वाद इसी तत्त्व के कारण होते हैं। इसकी ज्ञानेन्द्रिय **जिह्वा** तथा कर्मेन्द्रिय **लिङ्ग है। मोहादि** विकार इसी तत्त्व के परिणाम हैं।

ध्यान-विधि—पूर्वोक्त विधि से बैठकर, **'स्वाधिष्ठान' - चक्र** में **'वं'** - वीज वाले **अर्ध-चन्द्राकार चन्द्रमा** के समान कान्ति वाले **'जल'-तत्त्व** का 'ध्यान' करे। इससे भूख-प्यास को सहने की शक्ति मिलती है तथा जल में साधक की अव्याहत गति हो जाती है। ध्यान निम्न अनुसार करे—

वं वीजं वारुणं ध्यायेदर्ध-चन्द्रं शशि-प्रभम्। क्षुत्पिपासा-सहिष्णुत्वं जल-मध्येषु मज्जनम्॥

'अग्नि'-तत्त्व का निवास **'मणिपुर' - चक्र** में है। यह चक्र 'स्वः'-लोक का स्वामी है। 'अग्नि'-तत्त्व का रङ्ग **लाल** और आकृति **त्रिकोणाकार** है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय **आँख** तथा कर्मेन्द्रिय **पैर हैं**। **क्रोधादि** विकार तथा सूजन इत्यादि में इस तत्त्व की प्रधानता रहती है।

ध्यान-विधि—पूर्वोक्त विधि से आसन पर बैठकर **'मणिपुर' - चक्र** में **'रं'** वीज वाले, **त्रिकोणाकृति** और **अग्नि के समान लाल प्रभावान 'अग्नि' - तत्त्व** का 'ध्यान' करे। यह तत्त्व सिद्ध होने पर अत्यन्त अन्न ग्रहण करने की शक्ति, अत्यन्त पीने की शक्ति तथा धूप और अग्नि को सहने की शक्ति पैदा हो जाती है। ध्यान निम्न अनुसार करे—

रं वीजं शिखिनं ध्यायेत् त्रिकोणमरुण-प्रभम्। बह्वन्न-पान-भोक्तृत्वमातपाग्नि-सहिष्णुता॥

'वायु'-तत्त्व का निवास **'अनाहत-चक्र'** में है। यह चक्र **'महः'**-लोक का स्वामी है। **'वायु'-तत्त्व** का रङ्ग **हरा**, आकृति **लम्ब-गोल** अथवा **षट्-कोण** दोनों ही मानी गई हैं। इसका गुण **स्पर्श** है तथा ज्ञानेन्द्रिय **त्वचा** और कर्मेन्द्रिय **हाथ हैं**। **वात** और **दमा** इत्यादि रोगों में इस तत्त्व की प्रधानता रहती है।

ध्यान-विधि—पूर्वोक्त विधि से आसन पर बैठकर **'अनाहत'-चक्र** में **'यं'** वीजवाले 'वायु'-तत्त्व, जिसकी आकृति **लम्ब-गोल** अथवा **षट्-कोण** तथा **नीला अथवा मेघ-वत् काला रङ्ग** है, 'ध्यान' करे। इसके सिद्ध होने पर आकाश-गमन तथा पक्षियों की जैसी उड़ने की शक्ति प्राप्त होती है।

यं वीजं पवनं ध्याद, वर्तुलं[1] श्यामल[2]-प्रभम्। आकाश-गमनाद्यश्च, पक्षि-वद् गमनं तथा॥

पाठान्तर—१ षट्-कोणं, २ नील

'आकाश'-तत्त्व का निवास **'विशुद्ध'-चक्र** में है, यह चक्र **'जनः'**-लोक का स्वामी है। आकाश-तत्त्व का रङ्ग **मिश्रित (रङ्ग-बिरङ्गा)** तथा आकृति **विन्दु-विन्दु-निर्मित अण्डाकार गोल** है। कुछ लोग इसे निराकार भी मानते हैं। इसका गुण **शब्द** तथा ज्ञानेन्द्रिय **कान** और कर्मेन्द्रिय **वाणी** है।

ध्यान-विधि—पूर्वोक्त विधि से बैठकर, **'विशुद्ध'-चक्र** में **'हं'** वीज वाले निराकार चित्र-विचित्र आकाश-तत्त्व का 'ध्यान' करे। इससे त्रिकाल-दर्शन, ऐश्वर्य, अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

हं वीजं गगनं ध्यायेन्निराकारं बहु-प्रभम्। ज्ञानं त्रिकाल-विषयमैश्वर्यमणिमादिकम्॥

विशेष—उक्त विधियों से सिद्धि मिलने तक **जप-ध्यानादि** करने से **तत्त्व-सिद्धि** होती है किन्तु **गुरु** का **निर्देशन** आवश्यक है। पूर्व में तत्त्वों की पहिचानने की जो विधियाँ दी गई हैं, यदि **जप-ध्यान** आदि के साथ उनका भी अभ्यास किया जाए, तो सिद्धि सरलता से प्राप्त होती है।

(५०)

श्री हनुमान अष्टादशाक्षर मन्त्र-प्रयोग

मन्त्र (अष्टादशाक्षर) : **ॐ नमो हनुमते आवेशय आवेशय स्वाहा ।**

विधि—सबसे पहले हनुमान जी की एक मूर्त्ति रक्त-चन्दन की लकड़ो से बनवाए । किसी शुभ मुहूर्त्त में उस मूर्त्ति की प्राण-प्रतिष्ठा कर उसे रक्त-वस्त्रों से सु-शोभित करे । फिर रात्रि में स्वयं रक्त-वस्त्र धारण कर, रक्त - आसन पर पूर्व की तरफ मुँह करके बैठे । हनुमान जी की उक्त मूर्त्ति का पञ्चोपचार से पूजन करे । किसी नवीन पात्र में गुड़ के चूरे का नैवेद्य लगाए और नैवेद्य को मूर्त्ति के सम्मुख रक्खा रहने दे । घृत का 'दीपक' जलाकर, रुद्राक्ष की माला से उक्त 'मन्त्र' का नित्य ११०० जप करे और 'जप' के बाद स्वयं भोजन कर, 'जप'-स्थान पर रक्त-वस्त्र के बिछावन पर सो जाए ।

अगली रात्रि में जब पुनः पूजन कर नैवेद्य लगाए, तब पहले दिन के नैवेद्य को दूसरे पात्र में रख ले । इस प्रकार ११ दिन करे ।

१२ वें दिन एकत्र हुआ 'नैवेद्य' किसो दुर्बल ब्राह्मण को दे दे अथवा पृथ्वी में गाड़ दे । ऐसा करने से हनुमान जी रात्रि में स्वप्न में दर्शन देकर सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान कर देते हैं । 'प्रयोग' को गुप्त-भाव से करना चाहिए ।

(५१)

श्रीकार्तवीर्यार्जुन-माला-मन्त्र

विनियोग—ॐ अस्य श्रीकार्तवीर्यार्जुन-माला-मन्त्रस्य दत्तात्रेय ऋषिः । गायत्री छन्दः । श्रीकार्तवीर्यार्जुन देवता । अभीष्ट-सिद्धचर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—शिरसि दत्तात्रेय - ऋषये नमः । मुखे गायत्री-छन्दसे नमः । हृदि श्रीकार्तवीर्यार्जुन-देवतायै नमः । अभीष्ट-सिद्धचर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

पञ्चाङ्ग-न्यास—दत्तात्रेय - प्रियतमाय हृदयाय नमः । महिष्मती-नाथाय शिरसे स्वाहा । रेवा-नदी-जल-क्रीडा-तृप्ताय शिखायै वषट् । हैहयाधिपतये कवचाय हुम् । सहस्र-बाहवे अस्त्राय फट् ।

ध्यान—(१) दोर्दण्डेषु सहस्र-सम्मित-तरेष्वेतेष्वजस्रं लसत्,
कोदण्डैश्च शरैरुदग्र-निशितैरुद्यद्-विवस्वत्-प्रभः ।
ब्रह्माण्डं परिपूरयन् स्व-निनादैर्गण्ड-द्वयान्दोलित–
द्योतत्-कुण्डल-मण्डितो विजयतो श्रीकार्तवीर्यो विभुः ।।

(२) उदग्र - बाणाँश्चापानि, दधतं सूर्य-सन्निभम् ।
प्रपूरयन्तं ब्रह्माण्डं, धनुर्ज्या - निस्स्वनैस्तथा ।।
कार्तवीर्यं नृपं ध्यायेद्, गण्ड-शोभित-कुण्डलम् ।।

माला-मन्त्र—ॐ नमो भगवते कार्तवीर्यार्जुनाय हैहयाधिपतये सहस्र-कवचाय, सहस्र-कर-सदृशाय, सर्व-दुष्टान्तकाय, सर्व-शिष्टेष्टाय, सर्वत्रोदधेरागन्तुकान् अस्मद्-वसुविलुम्पकान् चौर-समूहान् स्व-कर-सहस्रैः निवारय निवारय, रोधय रोधय, पाश-सहस्रैः बन्धय बन्धय, अंकुश-सहस्रैः आकर्षय आकर्षय, स्व-चापोद्भूत-बाण-सहस्रैः भिन्दि भिन्दि, स्व-हस्तोद्गत-खड्ग-सहस्रैः छिन्धि छिन्धि, स्व-हस्तोद्गत-मुसल-सहस्रैः मर्दय मर्दय, स्व-शङ्खोद्भूत-नाद-सहस्रैः भीषय भीषय, स्व - हस्तोद्गत - चक्र-सहस्रैः निकृन्तय निकृन्तय, पर-कृत्यां त्रासय त्रासय, गर्जय-गर्जय, आकर्षण-आकर्षय, भ्रामय-भ्रामय, मोहय-मोहय, मारय-मारय उद्वासय-उद्वासय, उन्मादय-उन्मादय, तापय-तापय, विनाशय-विनाशय, विदारय-विदारय, स्तम्भय-स्तम्भय, जृम्भय-जृम्भय, मारय-मारय, वशीकुरु-वशीकुरु, उच्चाटय-उच्चाटय, विनाशय-विनाशय, दत्तात्रेय-श्रीपाद-प्रियतम ! कार्तवीर्यार्जुन ! सर्वत्रोदधेरागन्तुकान् अस्मद्-वसु-विलुम्पकान् चौर-समूहान् समग्र उन्मूलय-उन्मूलय हुं फट् स्वाहा ।।

पुरश्चरण—उक्त माला - मन्त्र का 'पुरश्चरण' ३००० आवृत्तियों से होता है। 'पुरश्चरण' करने के बाद ही 'प्रयोग' करना चाहिए। कुछ 'प्रयोग' निम्नलिखित हैं—

(१) रात्रि में एक पैर पर खड़े होकर, छः मास तक नित्य १०८ बार माला-मन्त्र का जप करने से, चोर स्वयं चोरी किया हुआ धन वापस कर देते हैं।

(२) चोरों के द्वारा पशुओं का अपहरण कर लिया गया हो, तो सारे पशुओं के गले में, पाश बाँधकर खींचते हुए श्रीकार्तवीर्यार्जुन का ध्यान कर, नित्य १०८ 'जप' करें। १२ दिनों तक इस विधि से 'जप' करने पर अपहृत पशु वापस आ जाते हैं।

(३) यदि चोरों ने अनाज चुराया हो, तो चोरी गए अनाज में से बचे हुए का, रात्रि में उक्त 'माला-मन्त्र' से, हवन करने से चोरों का ज्ञान हो जाता है।

(४) धनुष पर बाण चढ़ाए हुए श्रीकार्तवीर्यार्जुन का ध्यान कर, दशों दिशाओं में 'माला-मन्त्र' का 'जप' करने से ग्राम, नगर और राष्ट्र की रक्षा होती है।

(५) 'माला-मन्त्र' से अभिमन्त्रित मिट्टी, पत्थर या रेत जहाँ डाली जाती है, वहाँ रात्रि में किसी भी प्रकार का उत्पात नहीं होता।

(६) 'माला-मन्त्र' का ३००० जप करने से 'महा-मारी' नष्ट होती है। शत्रुओं का उच्चाटन, आपस में विद्वेषण तथा मारण होता है। तीनों लोक साधक के वश में हो जाते हैं।

(५२)

ग्रह-बाधा, ज्वर-नाशक विघ्नेश-मन्त्र

ॐ नमो गणपतये महा-वीर ! दश-भुज ! मदन-काल-विनाशन ! मृत्युं हन-हन, धम-धम, मथ-मथ, कालं संहर-संहर, सर्व-ग्रहांश्चूर्णय-चूर्णय, नागान् मोटय - मोटय, रुद्र - रूप त्रिभुवनेश्वर सर्वतोमुख ! हुँ फट् स्वाहा ॥

प्रयोग–(क) १०० बार उक्त मन्त्र जप कर भस्म का लेप करने से ज्वर का नाश होता है। (ख) उक्त मन्त्र से जल अभिमन्त्रित करके छींटे मारने से चूहे, सर्प आदि भाग जाते हैं। (ग) नित्य उक्त मन्त्र का १०० जप करने से ग्रह-बाधा तथा अप-मृत्यु का शमन होता है।

(५३)

गाय, भैंस आदि का दूध बढ़ाना

"ॐ हुँ कराली खर-खर, मुखर श्रीः ठः ठः ॥"

उपर्युक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित (७ या २१ बार) पशु-भोजन—घास आदि देने से गाय-भैंस आदि बहुत दूध देती हैं।

(५४)

सौभाग्य-प्राप्ति, वर-वधू-प्राप्ति प्रयोग

मन्त्र—ह्रीं क्लीं इन्द्राणि, सौभाग्य-देवते, मघ-वत्-प्रिये ! सौभाग्यं देहि मे स्वाहा ॥

विनियोग—ॐ अस्य श्रीइन्द्राणी-मन्त्रस्य बृहस्पति ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीइन्द्राणी देवता, सर्व-सौभाग्य-प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः ॥

ऋष्यादि-न्यास—शिरसि बृहस्पति - ऋषये नमः । मुखे गायत्री-छन्दसे नमः । हृदि श्रीइन्द्राणी-देवतायै नमः । सर्व-सौभाग्य-प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ॥

मन्त्र	**कर-न्यास**	**षडङ्ग-न्यास**
ह्रीं क्लीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः ।
इन्द्राणि	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा ।
सौभाग्य-देवते	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट् ।
मघ-वत्-प्रिये	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम् ।
सौभाग्यं	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट् ।
देहि मे स्वाहा	कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट् ।

ध्यान—कल्पद्रुमोद्यान-मध्ये विविध-मणि-विलसन्मण्डपान्तर्विराजन्,
मातङ्गाराति-पीठ-प्रविलसित-सरोज-संस्थां प्रसन्नाम् ।
पीनोत्तुङ्ग-स्तनार्ता पृथुज-घन-भरां पद्म-पत्रायताक्षीं,
इन्द्राणीमिन्द्र-नीलोत्पल-शकल-निभां हृद्य-भूषां नमामि ।

पूजन-यन्त्र—पहले षट्-कोण, फिर अष्ट-दल तथा भूपुर ।

पीठ-पूजा—'आधार-शक्तये नमः' से 'परमात्मने नमः' तक पीठ-पूजन करे। आठों दिशाओं में आठ तथा मध्य में नवमी पीठ-शक्ति का पूजन करे। नाम के आदि में 'ॐ' तथा अन्त में **'नमः'** का प्रयोग सर्वत्र करे। यथा—**ॐ कान्त्यै नमः, रमायै, प्रभायै, रमायै, विद्यायै, मदनायै, मदनातुरायै, रम्भायै, मनोज्ञायै।**

आसन-पूजन-मन्त्र—ह्रीं सव-शक्ति-कमलासनाय नमः।

आवाहन-मन्त्र—आगच्छ वरदे देवि ! परिवार-समन्विते !
यावत् त्वां पूजयिष्यामि, तावत् त्वं सुस्थिरा भव ॥

उक्त प्रकार आवाहन करके यथा-उपलब्ध उपचारों से भगवती इन्द्राणी का पूजन करे। तत्पश्चात् **'आवरण-पूजन'** करने की आज्ञा माँगे और आज्ञा मिल गई, इस भावना से 'आवरण-पूजन' करे—

प्रथम आवरण (षट्-कोण में)—षडङ्ग-न्यास के मन्त्रों से पूजन करे।

द्वितीय आवरण (अष्ट-दल-कमल में)—ॐ उर्वश्यै नमः, मेनकायै, रम्भायै, प्रम्लोचायै, पुञ्जिक-स्थलायै, तिलोत्तमायै, घृताच्यै, सुरूपायै ॥

तृतीय आवरण (भू-पुर में)—ॐ इन्द्राय नमः, अग्नये, यमाय, निऋतये, वरुणाय, वायवे, सोमाय, ईशानाय, ब्रह्मणे, अनन्ताय।

चतुर्थ आवरण (भू-पुर में दिक्पालों के साथ)—ॐ वज्राय नमः, शक्तये, दण्डाय, खड्गाय, पाशाय, अंकुशाय, गदायै, शूलाय, पद्माय, चक्राय।

इस प्रकार पूजन करने के बाद मन्त्र का **'जप'** करे। **'पुरश्चरण'** हेतु १ लाख और लाल कमल या बकुल (मौलश्री) के फूलों को त्रि-मधु (१ घृत, २ शक्कर और ३ शहद) के साथ मिलाकर दस हजार हवन करे। इस प्रकार पुरश्चरण करने से यह **सौभाग्य-लक्ष्मी-दाता मन्त्र** सिद्ध हो जाता है। तब प्रयोग करे। यथा—

१. प्रातःकाल चम्पा के फूलों से हवन करने से वेश्याओं का वशीकरण होता है।

२. सायं-काल जल के साथ घिसे हुए चन्दन के साथ नव-मालिका (वासन्ती, नेवारी, सेउती या मोगरा) के फूलों का अथवा पलाश (ढाक, छेवला) के फूलों का त्रि-मधु के साथ हवन करने से, कन्या को उत्तम वर और वर को उत्तम कन्या प्राप्त होती है।

३. नित्य एक अञ्जली लाजा (धान के फूले) घी में मिलाकर आठ आहुतियाँ देने से, मन-पसन्द कन्या प्राप्त होती है। इसी विधि से हवन करने से धन-धान्य, गो-धन, पुत्र और सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

४. उत्तम गुणों से युक्त कन्या प्रदान करती हुई, भगवती इन्द्राणी का ध्यान करते हुए, नित्य १००० जप करने से शीघ्र ही उत्तम कन्या प्राप्त होगी।

५. धारण हेतु यन्त्र—सर्व-प्रथम **षट्-कोण** बनाकर उसके मध्य में '**ह्रीं**' लिखें। फिर '**ह्रीं**' के मध्य में **साध्य का नाम** लिखें। षट्-कोणों में '**ह्रीं इन्द्राण्यै नमः**' लिखें। कोणों की सन्धियों में **षडङ्ग मन्त्र** लिखें। फिर अष्ट-दल पद्म लिखकर केसरों में दो-दो **स्वर (अ आ, इ ई)** आदि लिखें। फिर दलों के मध्य में मन्त्र के तीन-तीन अक्षर लिखें। इसके बाद भू-पुर बनाकर उसकी दिशाओं में '**क्लीं**' और कोणों (विदिशाओं) में '**ह्रीं**' लिखें। इस यन्त्र को धारण करने से त्रैलोक्य का वशीकरण, सौभाग्य, सौन्दर्य, धन-धान्य और अकल्पनीय उत्तम पद की प्राप्ति होती है।

श्री भैरवानन्दनाथ, १०८ चकराघाट, सागर (म. प्र.)

(५५)

नेत्र-रक्षा प्रयोग

नेत्र-हीन व्यक्ति न तो अपना दैहिक कर्म कर सकता है, न धार्मिक। इसलिए नेत्रों की रक्षा जीवन भर कैसे होगी, इस पर प्राचीन ऋषियों, मनीषियों ने बहुत कुछ अन्वेषण किया है। दवाओं के अतिरिक्त ऋषियों ने यन्त्र द्वारा भी नेत्र की रक्षा का उपाय बताया है। 'नेत्र' अर्थात् 'दृष्टि-शक्ति' के अधिष्ठातृ देवता '**भगवान् सूर्य**' हैं। अतः ऋषियों द्वारा सूर्योपस्थान, सूर्योपासना, सूर्यार्घ्य-दान की नित्य-पद्धति प्रचलित की। वही पद्धति सन्ध्योपासना के माध्यम से आज तक अबाध गति से प्रचलित है। '**लोक-चक्षु**' कहकर प्रति-दिन बुद्धिमान् भारतीय नेत्रों के रक्षक तथा ज्योति-प्रदाता सूर्य की प्रार्थना-आराधना करते हैं। ऋषियों ने अपनी आँखों की रक्षा तथा उनके रोगों के विनाश के लिए दवाएँ न कर प्रतिदिन—'**तच्चक्षुर्देव-हितं पुरस्तात्।**' कहकर भगवान् सूर्य की प्रति-दिन प्रातःकालिक प्रार्थनाएँ की हैं। इसीलिए ऋषियों को दिव्य दृष्टि मिली। उन्हें संसार के भूत, भविष्य और वर्तमान का द्रष्टा कहा गया। वेदों की ऋचाओं ने—'**ऋषयः**

द्रष्टारः भवन्ति।' कहकर उन्हें प्रशस्ति दी। यह केवल **'सूर्य'** की उपासना का ही सु-परिणाम है।

पौराणिक युग में भी अपनी आँखों को सुरक्षा के निमित्त मन्त्रों का ही व्यवहार देखा जाता है, दवाओं का नहीं। पुराणों में जगत् का एक नेत्र **'सूर्य'** को ही माना गया है, उसी की आँखों से जगत् नयन-वान हुआ है। ऐसा सभी पौराणिकों ने कहा है। इसीलिए उन्होंने प्रातः-कालिक सूर्य-दर्शन करते समय सूर्य को वन्दना में कहा है—**'नमः सवित्रे जगदेक-चक्षुषे।'** अर्थात् 'जगत् के एक-मात्र **'नेत्र'** भगवान् सूर्य को नमस्कार है।' तात्पर्य यह कि उसी के नेत्र से सारे संसार को **'नेत्र'** की ज्योति मिलती है, इसीलिए प्रातः-काल में ही सूर्य की वन्दना का विधान है।

जगत् को ज्योति देनेवाला सूर्य ही है। इसी को ज्योति से जगत् ज्योतित होता है। अतः अपने नेत्रों के लिए ज्योति उसी से माँगना सर्वथा समीचीन भी है। इसी विचार से भारतीयों ने दवा का आश्रय न लेकर, भस्म न खाकर, पहले भगवान् भास्कर से ही आँखों की रक्षा का वरदान माँगा है। **सूर्य की वन्दना तथा मन्त्रों का जप नेत्रों की सुरक्षा के लिए महौषधि** से तनिक भी कम नहीं है।

सूर्य के मन्त्रों का जप करने से लाभ होता है, क्योंकि **'मन्त्र'** स्वयं भगवान् का रूप होता है। भगवान् कृष्ण ने गीता के नवें अध्याय के सोलहवें श्लोक में कहा है—**'मन्त्रोऽहम्'''।'** इसी से मन्त्रों की शक्ति का पता चलता है। **'मन्त्र'** केवल वाक्य-योजना मात्र नहीं है, इसमें बीज-रूप में शक्ति विद्यमान रहती है। भारतीय मनीषियों ने इस-लिए मन्त्र द्वारा ही **आँखों की ज्योति-शक्ति सुरक्षित रखने के लिए जगज्ज्योति भगवान् भास्कर की आराधना, प्रार्थना, अर्चना, पाठ और जप** की प्रणाली प्रचलित की। इसी विचार की पुष्टि के लिए **'अक्षि-उपनिषद्'** का भी प्रणयन किया गया। उसमें स्पष्टतः लिखा गया है कि **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'**। यही नहीं, उसके जप और पाठ का उसमें विधान भी बताया गया है और कहा गया है कि जो इसका पाठ करता है, उसके वंश में कोई अन्धा नहीं होता, उस जापक और पाठक की तो बात ही क्या!

पाठकों के लाभार्थ दौलतगञ्ज, छपरा (सारन, बिहार) निवासी पण्डित कामताप्रसाद पाण्डेय, काव्य-तीर्थ पुराणाचार्य के सौजन्य से प्राप्त मन्त्र अविकल रूप में यहाँ दिया जा रहा है।

अथातः चाक्षुषीं पठित - विद्यां, चक्षु-रोग-हरां व्याख्यास्यामः ।
यथा च चक्षु-रोगा सर्वतो नश्यन्ति, चक्षुषोर्दीप्तिर्भवति ।।

विनियोग—ॐ अस्यः चाक्षुषी विद्यायाः अहिर्बुध्न्य ऋषिः । गायत्री छन्दः । सविता देवता । चक्षू-रोग-निवृत्तये पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—अहिर्बुध्न्य-ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । सविता देवतायैं नमः हृदि । चक्षू-रोग-निवृत्तये पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः चक्षुस्तेजः स्थिरो भव । मां पाहि पाहि त्वरितं चक्षू-रोगं शमय शमय । मम जात-रूपं तेजो दर्शय । यथाऽन्धो न स्यामिति कल्पय कल्पय, कल्याणं कुरु कुरु ।

यानि यानि चास्मात् पूर्व-जन्मोपार्जितानि चाक्षुष्मत्ति-रोध-वद्-दुष्कृतानि, तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय ।

ॐ चक्षुस्तेजो-दात्रे दिव्य-भास्कराय ॐ नमः करुणा-कराय अमृताय ॐ नमः श्री सूर्याय । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षि-तेजसे नमः ।

ॐ सत्त्वाय नमः । ॐ असतो मा सद्-गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा-मृतं गमय ।

हंसो भगवान् शुचि-रूपः प्रति-रूपः विश्व-रूपं घृणिगं जात-वेदसं हिरण्य-मयं ज्योती-रूपं तपन्तं सहस्र-रश्मिः शतधा वर्तमानः पुरुषः प्रजानाम् उदत्येष सूर्यः ।

ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाक्षि-तेजसेऽहो वाहिनि वाहिनी स्वाहा ।

।। फल-श्रुति ।।

एवं चाक्षुष्मती विद्यया स्तुतः श्रीसूर्य-नारायणः सु-प्रीतोऽब्रवीत—'चाक्षुष्मतो विद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षि-रोगो भवति, न तस्य कुलेऽन्धो भवति ।' अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वाऽथ विद्या - सिद्धिर्भवति । य एवं वेद, स महान् भवति ।

।। हरिः ॐ तत्सत् ।।

—पण्डित श्रीललन पाण्डेय, पटना (बिहार)

(५६)

शीतला-शान्ति प्रयोग

* पण्डित ईश्वरीदत्त ज्योतिषी, प्रयाग

'**ॐ ह्रीं शीतलायै नमः**' का १०० बार उच्चारण करते हुए श्वेत चन्दन-युक्त शत-पत्री-अर्क द्वारा शत-संख्यक अर्घ्य-दान करने से एक सप्ताह में शीतला-व्रण शान्त हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त मैं यहाँ एक स्वानुभूत 'प्रयोग' **शीतला की शान्ति** के लिए लोक-कल्याणार्थं लिखता हूँ। यह शास्त्रीय प्रयोग है और अव्यर्थ है।

इस प्रयोग में पहले '**कलश-स्थापन**' करे। फिर उसके ऊपर '**यन्त्र**' की स्थापना करे। तब उस यन्त्र में '**ह्रीं शीतलायै ह्रीं**' से **शीतला देवी का आवाहन, पूजनादि** करे। इसके बाद '**ध्यान**' कर मन्त्र का **११ माला** '**जप**' करे। तब 'रहस्य' का पाठ करे। यन्त्रादि का विवरण क्रम-पूर्वक यहाँ दिया जाता है।

१ यन्त्र-स्थापनादि—स्वर्ण या चाँदी या ताँबे या पीले रेशमी वस्त्र पर यन्त्र बनाकर, उसे पीले वस्त्र से लपेटकर, 'कलश' पर स्थापित करे। तदनन्तर स्नान, चन्दन, पुष्प, धूप, दीपादि उपचारों से 'यन्त्र' का विधि-वत् पूजन करे। दधि, चिउड़ा आदि लाज [धान का लावा] और शर्करा का नैवेद्य प्रदान करे। 'यन्त्र' इस प्रकार बनावे—**षट्-कोण के बाहर वृत्त बनावे और षट्-कोण के मध्य में** '**ॐ जूं सः**' लिखे। सामने के त्रिकोण से **प्रत्येक त्रिकोण के मध्य में** '**प्रदक्षिण**'-**क्रम से मन्त्र का एक-एक अक्षर लिखे**। मन्त्र यह है-'**ह्रीं शीतलायै ह्रीं**'।

२ ध्यान—दिग्-वासां मार्जिनिकां च सूर्पं, कर-द्वये सन्दधतीं घनाभाम्।
श्रीशीतलां सर्व-रुजार्ति-नष्टौ, पीताङ्ग-राग-स्रजमर्चयामि ।।

इस प्रकार ध्यान कर जप करे। अब रहस्य का पाठ करे—

आदौ कृत-युगे ब्रह्मा, महेशं वाक्यमब्रवीत्। तवाज्ञाय दिव-सृष्टा, नाना-विधि-रताः प्रजाः।
समस्तैर्भू-स्तुतौ व्याप्ता, भवन्त्यन्येऽपि तद्-विधाः। कामेन याति भार्या, सुपुनः सृष्टिः प्रवर्द्धते।
गजैरश्वैर्मनुष्याद्यैः, व्याप्तेयं तु धराऽखिलाम्। शीघ्रं यास्यति पातालं तत्त्रैलोक्यं विधायताम्।
एवं ब्रह्म-वचः श्रुत्वा, शूलमैक्षन् महेश्वरः। ततो जज्ञे पुमानेको, भीम-घोर-पराक्रमः।

रक्तान्त-लोचनः क्रोधी, वडवाग्नि-युतो नरः। ऊर्ध्व-केशो ललज्जिह्वो, दृढ़हृत्को जितेन्द्रियः।
तं दृष्टा तु महा-देवः, पार्वती वाक्यमब्रवीत्। जात एष महा-क्रूरः, सर्व-संहार-कारकः।
एतस्य मोहनार्थाय, देहि भार्या यथोचिता। एवं शिव-वचः श्रुत्वा, स्वकं पृष्ठं ददर्श ह।
ततो देवी समुत्पन्ना, योच्यते भवितव्यता। रूप-लावण्य-सम्पन्ना, पीनोन्नत-पयोधरा।
मारणास्त्रं मोहनास्त्रं, कराभ्यां दधती शुभा। श्वेत-वस्त्र-परीधाना, लज्जा-प्रवृत्त-लोचना।
सा प्रणम्य तदा देवी, शिवयोरग्रतः स्थिता। शस्त्र-भार-भराक्रान्ता, काल-चित्त-विमोहिनी।
दृष्ट्वा तां पार्वतीमाह, ममाज्ञा क्रियतामिति। कालस्य भव पत्नी, त्वमेतच्चित्तं विमोहय।
वाचयस्व वरं श्रेष्ठं, कुरु कार्यं प्रजापतेः। ततः प्रीता तु तामाह, देव्यग्रे प्रणता स्थिता।
ममाधीनमिदं विश्वं, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकं। कालश्चायं ममाधीनः, कोपिमानं च वेत्स्यति।
आब्रह्म-स्तम्ब-पर्यंतं, विष्णौ देव्यां च शूलिनि। दृष्टिर्मम समैवास्तु, मत्-स्वरूपा विदस्त्विमे।
तथेत्युक्त्वा भवान्या सा, पाणि-ग्रहमङ्गीकरत्। कृत-कृत्योऽभवत् काल, उद्वाह्य भवितव्यताम्।
कृतोद्वाहं तु तं ज्ञात्वा, विधाता वाक्यमब्रवीत्। शीघ्रमागम्यतां स्वामिन्सृष्टिः संहार्यतामिति।
ततस्तु भृत्याः कालेन, रचिताः स्वस्य तेजसा। भवितव्यतया सहजी-कृताः स्वस्याभि-तेजसा।
शेषो ज्वरः पांडु-सारो, श्वासः पानात्यपादिकाः। आभ्यंतराः परिचाराः शतशस्तेन निर्मिताः।
सर्पा व्याघ्रा वकाः सिंहा, वृश्चिका राक्षसा गजाः। भूतप्रेतपिशाचाश्च, बाह्यतः परिचारकाः।
तस्या आभ्यन्तराः सख्यः कामिनी मोहिनी तृषा, लक्ष्म्याहंकृति-बुद्ध्यादिनिद्रेच्छेर्ष्याभयादिकाः।
ग्रहणी कामला सूची, छर्दिमूर्च्छाश्मरी तृषा। डाकिनी शाकिनी घोरेत्याद्या बाह्या भयादिकाः।
एवं परिवृतं दृष्ट्वा, स्व-सैन्यमवचारयत्। मत्कोपोऽत्यधिको लोके, न जानन् भवितव्यताम्।
ब्रह्म-विष्णु-महेशाद्या, हननीया मयाऽऽदितः। एवं विचार्य मनसि, महेशं हन्तुमुद्यतः।
तं दृष्ट्वा तु महेशेन, शक्तिरेकामदर्शिता। अति-घोरा विरूपाक्षी, सङ्कीर्ण-जघनोदरा।
सन्दह्यमाना कोपेन, ज्वालयन्ती दिशो दश। तस्यास्तु दृष्टि-पातेन, कालः सर्वाङ्गपीडितः।
त्रिस्फोटक-भवो दाहः, क्षिप्रं तस्य प्रशाम्यति। यस्त्वामुदक-मध्ये तु, धृत्वा पूजयते नरः।
त्रिस्फोटक-भयं घोरं, गृहे तस्य न जायते। शीतले ! ज्वर-दग्धस्य, पूति-गन्ध-गतस्य च।
प्रनष्ट-चक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम्। शीतले ! तनुजान् रोगान्, तृषां हरसि दुस्त्यजान्।
विस्फोटक-विशीर्णानां, त्वमेकाऽमृत-वर्षिणी। गल-गण्ड-ग्रहा रोगा, ये चान्ये दारुणान् तृणां।
त्वदनु-ध्यान-मात्रेण, शीतले ! यान्ति संक्षयं। न मन्त्रं नौषधं तत्र, पाप-रोगस्य विद्यते।

त्वमेका शीतले ! धात्री, नान्यां पश्यामि देवतां । मृणाल-तंतु-सदृशीं नाभिहृन्मध्य-संस्थिताम् ।
यस्त्वां सचिन्तयेद् देवि ! तस्य मृत्युर्न जायते । एवं स्तुता तदा देवी, शीतला प्रीति-मानसा ।
उवाच वाक्यं कालाय, वरं वरय सत्वरम् ।

।। काल उवाच ।।

अहो अद्‌भुत-माहात्म्यं, तव दृष्टं मयाऽधुना । पीडां मम तया क्षिप्रं, संहृर्थं कुरु मे सदा ।

।। शीतलोवाच ।।

एषा तव जगत्-पुत्री, भार्येयं भवितव्यता । अस्याज्ञया प्रवर्तते, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
अहं त्वं च महेशाद्या, मनोऽधीनास्तु तन्मनः । बुद्ध्याधीनं जायते सा, यादृशी भवितव्यता ।
साहाय्यं ते करिष्यामि, हरिष्यामि इमाः प्रजाः । उपोदको तु याखोदे, ददावुष्णं ततः खरं ।
तं गर्भं भक्षयिष्यामि, सोऽपि चेदुष्ण-भुग् भवेत् । सन्तुष्टा शीतलेनाहं, सदा तत्सेवितस्य च ।
प्रत्यहं या समश्नाति, मालत्यर्कमुपोदको । तस्या गर्भं न स्पृशामि, यावज्जीवं न संशयः ।
मम कोपेन सञ्जाते, दाहे मश्रु नरोत्तमः । दधि-भक्तं ब्राह्मणेभ्यो, यस्तुराभ्यः प्रदाय च ।
स्वयमश्नाति सप्ताहं, तस्य पीड़ा हराम्यहम् । अष्टकं हि ममैतद्धि, यः पठन्मानवः सदा ।
विस्फोटक-भयं घोरं, कुले तस्य न जायते । श्रोतव्यं पठितव्यं च, नरैर्भक्ति-समन्वितैः ।
उपसर्ग-विनाशाय, परं स्वस्त्ययनं महत् । शीतलाऽष्टकमेतद्धि, न देयं यस्य कस्यचित् ।
दातव्यं सर्वदा तस्मै, भक्ति-श्रद्धान्वितो हि यः । एवमुक्त्वा ततः सर्वे, यथैव भवितव्यता ।
तथा लोकान् जिघांसन्ति, कालस्य वशमागताः । अथ वक्ष्ये शीतलादि-चिकित्सार्क-प्रभावतः ।
जात्यर्कं वा कदल्यर्कं, शत-पत्र्यर्कमेव वा । यो भुक्त्वा दधि-भक्ताशो, शीतला तन्न मारयेत् ।
चन्दनं वासको मुस्तं, गुडूची द्राक्षया सह । एषामर्को शीतलेति, शीतला-ज्वर-नाशनः ।

(५७)

ऐं-कार प्रयोग

• 'कौलाचार्य' पं० नथमल दाधीच, सीकर, राजस्थान

नारद ने ब्रह्मा के निकट जिज्ञासा की—हे देव-श्रेष्ठ ! किस उपाय से मानव की विद्या-वृद्धि हो एवं वेदान्त का प्रकाश हो, यह मेरे लिए कथन करें ।

ब्रह्मा ने कहा—हे वत्स ! तुमने लोक-हितार्थ जो उत्तम प्रश्न किया है, वही हमने कल्पारम्भ में भगवान् विष्णु के निकट, जिज्ञासु - रूप में किया था । ब्रह्म-मय सर्वात्मा विष्णु ने प्रसन्न होकर, जो हमसे कथन किया, वह हम तुमसे कहते हैं ।

उन्होंने कहा कि '**सारस्वत कल्प**' के विज्ञान मात्र से मानव की जड़ता दूर होती है, वह सर्व-शास्त्र में, पारङ्गत होकर सर्वज्ञता लाभ करता है एवं उसमें विचित्र वाक्य-रचना-शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसके प्रसाद से देव-गण ने 'सर्व-पूज्यत्व', वृहस्पति ने 'वागीशत्व' एवं द्वैपायन ने 'वेद-व्यास'-पद को प्राप्त किया है।

सारस्वत कला-प्रयोग

'**ऐं**' मन्त्र का द्वादश लक्ष 'जप' करने पर, एक मूक व्यक्ति भी वाक्-पति होता है। 'जप' करने से पूर्व स्व-नाभि में शत-दल कमल का चिन्तन करे। उसके मध्य में सूर्य-मण्डल, चन्द्र-मण्डल एवं वह्नि-मण्डल का 'ध्यान' करे। इस मण्डल के मध्य में ज्योत्स्ना-मय प्रदीप्त-वर्ण रत्न-सिंहासन की चिन्ता करे। उसके ऊपर 'वागीश्वरी देवी' का 'ध्यान' करे। यथा—

देवी की देह-कान्ति मुक्त-कलाप की तरह समुज्ज्वल है. ज्योत्स्ना की आभा-विशिष्ट हैं। देवी मुक्ताहार-विभूषिता, शुभ्र-वर्णा, अर्द्ध-चन्द्र-विमण्डिता हैं। वागीश्वरी देवी चतुर्भुजा हैं। दक्षिण हस्त-द्वय में से एक में 'व्याख्या - मुद्रा' एवं अन्य में 'वर्ण-माला' है। वाम-हस्तों में 'अमृत-पूर्ण कुम्भ' और 'पुस्तक' हैं। मध्य भाग क्षीण है, स्तन-द्वय स्थूल हैं। स्तन-भार से देवी विनम्र हैं एवं रत्नादि-भूषणों से विभूषित हैं।

इस प्रकार आत्मा से अभेद-ज्ञान-पूर्वक वागीश्वरी देवी का 'ध्यान' कर क्रमशः 'पूजन' करे। '**ह्लां अंगुष्ठाभ्यां स्वाहा, ह्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा**' इत्यादि रूप से 'कर-न्यास' एवं 'आं हृदयाय नमः' इत्यादि रूप से 'षडङ्ग-न्यास' करे। बाद में भ्रू-मध्य में, नाभि में, गुह्य-देश में, वस्ति में 'बीज-न्यास' करे एवं देवता-भाव-सिद्ध्यर्थ निज-देह में भी 'पीठ-न्यास' कर, 'व्यापक-न्यास' करे एवं मातृकाओं का 'पीठ-पूजन' करे। बाद में '**वर्ण-पद्मासनाय नमः**' से आसन को प्रणाम कर मूल-मन्त्र से देवी की मूर्ति-कल्पना कर, आवाहन-पूर्वक देवी का पूजन करे।

'**ह्लां हृदयाय नमः**' आदि षडङ्ग मन्त्रों से **प्रथम आवरण-पूजन** समाप्त करके, शक्ति-वर्ग द्वारा **द्वितीय आवरण का पूजन** करे। पद्म-दल के आगे यथा—नियम ब्राह्मी आदि शक्तियों का पूजन करे। बाद में लोक-पालादि एवं अस्त्रादि की पूजा करे। इस प्रकार जप-पूजन में नियुक्त होकर, वागीश्वरी की पूजा करे। द्वादश लक्ष जप करने पर, वक्तृता-शक्ति एवं कवित्व-शक्ति प्राप्त होती है। प्रभात में एक हजार जप कर, ब्राह्मी-

शाक-रस एवं बच का पान करने पर **बुद्धि की वृद्धि** होती है। श्रुति, वेद, आगम, पुराण कण्ठ में विराजमान हो जाते हैं।

आकण्ठ-जल-मग्न होकर, सूर्य-मण्डल में, ज्योति-पुञ्ज निभा, परिवार-वेष्टिता एवं वर-अभय मुद्रा, व्याख्या-मुद्रा, पुस्तक-धारिणी वागीश्वरी देवी का ध्यान कर, षट्-मास तक इन्द्रिय-संयम-पूर्वक रहकर प्रति-दिन एक हजार जप करे। इससे साधक वाक्-सिद्धि प्राप्त कर कवियों में श्रेष्ठ होता है।

पर सारस्वत-प्रयोग

पर सारस्वत प्रयोग : इस प्रयोग से **जाड्य (जड़ता) दूर होगा**। निशा-शेष में उठकर, 'पवित्र' भाव से, एक मन से, **'आत्मा' को 'गुरु'-रूप में 'ध्यान'** कर, निखिल जगत् को उसके प्रभा-जाल से परिव्याप्त चिन्तन करे। इसके बाद भावना से, मूलाधार-स्थिता कुण्डलिनी को जाग्रत् कर, क्रमशः **षट्-चक्र-भेदन** करके कुण्डलिनी देवी को पर-शिव के पास पहुँचाकर, सहस्रार-स्थित **'सुधा-पान'** करावे।

फिर **ऊर्ध्व-ग्रन्थि-भेद** करके दीप-स्वरूपिणी, बीज-रूपा, निज-शक्ति की आभा से देदीप्यमान शब्द-ब्रह्म-स्वरूपा कुल-कुण्डलिनी देवी को परं-शिव में निश्चला ध्यान करके, निज शरीर को उस देवी की देह-प्रभा से परिव्याप्त चिन्तन करे।

इस प्रकार अनुष्ठान करते हुए, एक वर्ष तक प्रति-दिन वागीश्वरी-मन्त्र (ऐं) का एक हजार जप करने से साधक वृहस्पति-सदृश वाक्-पति होता है एवं छन्द, अलङ्कार, न्याय, मीमांसा आदि नाना शास्त्र-व्याख्या में दक्ष होता है।

विशेष योग : नाभि-चक्र में सौम्य मूर्ति, लोहित-वर्णा, पट्ट-वस्त्र-परीधाना, रक्ताभरण से अलंकृता, पाशांकुश-धारिणी, दिव्य-स्वरूपा, वराभय-युता, दृष्टि-द्वारा सुधा-वर्षिणी, साधक का मनोरथ परिपूर्ण करनेवाली वागीश्वरी देवी का चिन्तन कर, एक लक्ष जप करे। त्रि-मधु द्वारा एक लक्ष रक्तोत्पल 'होम' कर, दुग्ध-सम्वित्-घृत द्वारा देवी का 'तर्पण' करे। मधु-मिश्रित दधि, पिष्टक एवं पायस की बलि प्रदान करे। इस प्रकार उपासना करने पर साधक साक्षात् कुबेर-सदृश होता है। इस मन्त्र के जपान्त में त्रि-मधु-समन्वित श्वेत सर्षप द्वारा होम करने पर त्रि-जगत् वशीभूत होगा। पद्म द्वारा होम करने पर महती सम्पत्ति का लाभ होगा।

विशेष—उक्त प्रयोगों में वागीश्वरी-यन्त्र में आवरण-पूजनादि करणीय है। इस विषय में पूजन-प्रक्रिया जानने के हेतु 'हिन्दी-तन्त्रसार' नामक पुस्तक देखने योग्य है।

(५८)

दिव्य मातंगी-कवच

।। श्रीदेव्युवाच ।।

साधु-साधु महा-देव ! कथयस्व सुरेश्वर ! मातङ्गी-कवचं दिव्यं, सर्व-सिद्धि-करं नृणाम् ।।

श्री देवी ने कहा—हे महा-देव ! हे सुरेश्वर ! मनुष्यों को **सर्व-सिद्धि-प्रद दिव्य मातङ्गी-कवच** अति उत्तम है, उस कवच को मुझसे कहिए ।

।। श्री ईश्वर उवाच ।।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि, मातङ्गी-कवचं शुभं । गोपनीयं महा-देवि ! मौनी जापं समाचरेत् ।।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! उत्तम मातङ्गी-कवच कहता हूँ, सुनो । हे महा-देव, इस कवच को गुप्त रखना, मौनी होकर जप करना ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीमातङ्गी - कवचस्य श्री दक्षिणा-मूर्तिः ऋषिः । विराट् छन्दः । श्रीमातङ्गी देवता । चतुर्वर्ग-सिद्धये पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास——श्रीदक्षिणा-मूर्ति-ऋषये नमः शिरसि । विराट्-छन्दसे नमः मुखे । श्रीमातङ्गी-देवतायै नमः हृदि । चतुर्वर्ग-सिद्धये जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

मूल कवच-स्तोत्र

ॐ शिरो मातङ्गिनी पातु, भुवनेशी तु चक्षुषी । तोडला कर्ण-युगलं, त्रिपुरा वदनं मम ।।
पातु कण्ठे महा-माया, हृदि माहेश्वरी तथा । त्रि-पुष्पा पार्श्वयोः पातु, गुदे कामेश्वरी मम ।।
ऊरु-द्वये तथा चण्डी, जङ्घयोश्च हर-प्रिया । महा-माया पाद-युग्मे, सर्वाङ्गेषु कुलेश्वरी ।।
अङ्गं प्रत्यङ्गकं चैव, सदा रक्षतु वैष्णवी । ब्रह्म-रन्ध्रे सदा रक्षेन्, मातङ्गी नाम-संस्थिता ।।
रक्षेन्नित्यं ललाटे सा, महा-पिशाचिनीति च । नेत्रयोः सुमुखी रक्षेत्, देवी रक्षतु नासिकाम् ।।
महा-पिशाचिनी पायान्मुखे रक्षतु सर्वदा । लज्जा रक्षतु मां दन्तान्, चोष्ठौ सम्मार्जनो-करा ।।

मातङ्गिनी देवी मेरे मस्तक की रक्षा करे, भुवनेश्वरी दो नेत्रों की, तोतला देवी दो कर्णों की, त्रिपुरा देवी मेरे बदन-मण्डल की, महा-माया मेरे कण्ठ की, माहेश्वरी मेरे हृदय की, त्रिपुरा दो पार्श्वों की और कामेश्वरी मेरे गुह्य-देश की रक्षा करें । चण्डी दो ऊरु, रति-प्रिया जङ्घा, महा-माया दो चरण और कुलेश्वरी मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करे । वैष्णवी सतत मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग की रक्षा करे, मातङ्गी ब्रह्म-रन्ध्र में अवस्थान करके मेरी

रक्षा करे। महा-पिशाचिनी बराबर मेरे ललाट की रक्षा करे, सुमुखी चक्षु की रक्षा करे, देवी नासिका की रक्षा करे। महा-पिशाचिनी वदन के पश्चाद्-भाग की रक्षा करे, लज्जा मेरे दन्त की और सम्मार्जनी-हस्ता मेरे दो ओष्ठों की रक्षा करे।

चिबुके कण्ठ-देशे च, ठ-कार-त्रितयं पुनः। स-विसर्गं महा-देवि! हृदयं पातु सर्वदा ।।
नाभिं रक्षतु मां लोला, कालिकाऽवतु लोचने। उदरे पातु चामुण्डा, लिङ्गे कात्यायनी तथा ।।
उग्र-तारा गुदे पातु, पादौ रक्षतु चाम्बिका। भुजौ रक्षतु शर्वाणी, हृदयं चण्ड-भूषणा ।।
जिह्वायां मातृका रक्षेत्, पूर्वे रक्षतु पुष्टिका। विजया दक्षिणे पातु, मेधा रक्षतु वारुणे ।।
नैऋत्यां सु-दया रक्षेत्, वायव्यां पातु लक्ष्मणा। ऐशान्यां रक्षेन्मां देवी, मातङ्गी शुभकारिणी ।।
रक्षेत् सुरेशी चाग्नेये, बगला पातु चोत्तरे। ऊर्ध्वं पातु महा-देवि! देवानां हित-कारिणी ।।
पाताले पातु मां नित्यं, वशिनी विश्व-रूपिणी। प्रणवं च ततो माया, काम-वीजं च कूर्चकं ।।
मातङ्गिनी ङे-युताऽस्त्रं, वह्नि-जायाऽवधिर्पुनः। सार्द्धैकादश-वर्णा सा, सर्वत्र पातु मां सदा ।।

हे महा-देवि! तीन 'ठं' मेरे चिबुक और कण्ठ की और तीन 'ठं' सदा मेरे हृदय-देश की रक्षा करें। लोला माँ मेरे नाभि-देश की रक्षा करे, कालिका चक्षु की रक्षा करे, चामुण्डा जठर की रक्षा करे और कात्यायनी लिङ्ग की रक्षा करे। उग्र-तारा मेरे गुह्य की, अम्बिका मेरे पद-द्वय को, शर्वाणी मेरे दो बाहुओं की और चण्ड-भूषण मेरे हृदय-देश की रक्षा करे। मातृका रसना की रक्षा करे, पुष्टिका पूर्व-दिशा की तरफ, विजया दक्षिण-दिशा की तरफ और मेधा पश्चिम दिशा की तरफ मेरी रक्षा करे। श्रद्धा नैर्ऋत-कोण की तरफ, लक्ष्मणा वायु-कोण की तरफ, शुभ-कारिणी मातङ्गी देवी ईशान-कोण की तरफ, सुवेशा अग्नि-कोण की तरफ, बाला उत्तर दिक् की तरफ और देव वृन्द की हित-कारिणी महा-देवो ऊर्ध्व-दिक् की तरफ रक्षा करे। विश्व-रूपिणी वशिनी सर्वदा पाताल में मेरी रक्षा करे। **'ॐ ह्रीं क्लीं हूं मातङ्गिन्यै फट् स्वाहा'**—यह सार्द्धैकादश-वर्ण-मन्त्र-मयी मातङ्गी सतत सकल स्थानों में मेरी रक्षा करे।

।। फल - श्रुति ।।

इति ते कथितं देवि! गुह्यात् गुह्य-तरं परमं। त्रैलोक्य-मङ्गलं नाम, कवचं देव-दुर्लभम् ।।
यः इदं प्रपठेत् नित्यं, जायते सम्पदालयं। परमैश्वर्यमतुलं, प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।।
गुरुमभ्यर्च्य विधि-वत्, कवचं प्रपठेद् यदि। ऐश्वर्यं सु-कवित्वं च, वाक्-सिद्धिं लभते ध्रुवम् ।।
नित्यं तस्य तु मातङ्गी, महिला मङ्गलं चरेत्। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च, ये देवा सुर-सत्तमाः ।।

ब्रह्म-राक्षस-वेतालाः, ग्रहाद्या भूत-जातयः । तं दृष्ट्वा साधकं देवि ! लज्जा-युक्ता भवन्ति ते ।।

हे देवि ! तुमसे मैंने यह 'त्रैलोक्य-मोहन' नाम का अति गुह्य देव-दुर्लभ कवच कहा है । जो व्यक्ति नित्य इसका पाठ करता है, वह सम्पत्ति का आधार होता है और अतुल परमैश्वर्य प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं । यथा-विधि गुरु-पूजा करके उक्त कवच का पाठ करने से ऐश्वर्य, सु-कवित्व और वाक्-सिद्धि निश्चय ही प्राप्त की जा सकती है । मातङ्गी उसे नित्य नारी-सङ्ग दिलाती हैं । हे देवि ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, दूसरे प्रधान देव-वृन्द, ब्रह्म-राक्षस, बैताल, ग्रह आदि भूत-गण उस साधक को देखकर लज्जित होते हैं ।।१-५।।

कवचं धारयेद् यस्तु, सर्वां सिद्धि लभेद् ध्रुवं । राजानोऽपि च दासत्वं, षट्-कर्माणि च साधयेत् ।।
सिद्धो भवति सर्वत्र, किमन्यैर्बहु-भाषितैः । इदं कवचमज्ञात्वा, मातङ्गीं यो भजेन्नरः ।।
अल्पायुर्निर्धनो मूर्खो, भवत्येव न संशयः । गुरौ भक्तिः सदा कार्या, कवचे च दृढा मतिः ।।
तस्मै मातङ्गिनी देवी, सर्व-सिद्धि प्रयच्छति ।।

जो व्यक्ति इस कवच को धारण करता है, वह सर्व-सिद्धियाँ लाभ करता है । नृपति-गण उसका दासत्व करते हैं । वह षट्-कर्म-साधन कर सकता है । अधिक क्या, वह सर्वत्र सिद्ध होता है । इस कवच को न जानकर, जो मातङ्गी की पूजा करता है, वह अल्पायु, धन-हीन और मूर्ख होता है । गुरु-भक्ति सर्वदा परमावश्यक है । इस कवच पर भी दृढ़ मति अर्थात् पूर्ण विश्वास रखना परम कर्त्तव्य है । फिर मातङ्गी देवी सर्व - सिद्धियाँ प्रदान करती हैं ।

(५९)

गर्भ-स्तम्भन-मन्त्र

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं वं वटुकाय आपदुद्धरणाय श्रीमते वीर-वटुकाय ते नमः । कष्टं नाशय, गर्भ-पक्षात् सौख्यं वितर, सर्वान् कामान् पूरय पूरय । वं क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ।।

उक्त मन्त्र का प्रतिदिन जप करे । १००० जप से मन्त्र सिद्ध होगा । धूप, दीप, नैवेद्य से पूजन करने के बाद जप करे । तदनन्तर आवश्यकता होने पर १०८ बार मन्त्र जप कर, १०८ ही आहुतियों से हवन करे । हवन-सामग्री—गुरुचि, शतावर, गुग्गुल—इन तीनों को घी में मिला कर हव्य प्रस्तुत करे ।

–पं० कृष्णानन्द मिश्र 'वैद्य'

प्रभु का स्मरण क्यों ?

☐ एक राजा के पास सब कुछ होते हुए भी, वह 'सुखी' नहीं हो सकता। लेकिन एक आदिवासी लकड़ी काट कर या शिकार से पेट भरता हो और उसके पास कुछ सामग्री भी न हो, तो भी वह 'सुखी' हो सकता है। कारण यह है कि विज्ञान के बढ़ने से, आवश्यकता बढ़ती है और आवश्यकता के बढ़ने से, तकलीफ बढ़ती है। कोई चीज जब पहले - पहल प्राप्त होती है, तब उसके साथ उसकी कुछ गन्दगी भी बाहर निकलती है। हिन्दुस्तान को स्व - राज्य मिलते ही जितनी गन्दगी थी, वह सब एक साथ बाहर निकल आई। जमीन में से तेल के निकलने के साथ - साथ मिट्टी, कीचड़ भी निकलेगा। भक्त में 'भक्ति' का स्फुरण होने के साथ - साथ, 'काम - क्रोध' इत्यादि भी जोर करते हैं। यदि 'मन' उनके आकर्षण में नहीं फँसता, तो 'मन' के लिए कोई दूसरी चीज पकड़ने को न होने से, वह प्रभु को ग्रहण करने के योग्य बन जाता है।

☐ जब विज्ञान का स्फुरण होता है, तब उसके साथ कीचड़ भी बाहर आता है, अर्थात् आवश्यकताएँ बढ़ती हैं। आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त, चिन्ता और तकलीफ बढ़ती है। चिन्ता और तकलीफ बढ़ेगी, इसलिए विज्ञान भी न बढ़े, ऐसा कोई नहीं कहता। राजा की आवश्यकताओं का किसी भी दिन अन्त नहीं होता, अतएव वह 'सुखी' नहीं होता। आदिवासी को स्थूल वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है और उसके पास जो कुछ है, उसमें उसको सन्तोष होने से वह 'सुखी' दीखता है लेकिन उसका वह 'सुख' स्थायी नहीं होता, कारण जो चीज है, उसके न होने पर उसको 'दुःख' होगा। उस चीज को फिर प्राप्त करने की चिन्ता में वह पड़ेगा। यदि उसने उस चीज का अन्तर से त्याग कर दिया हो, तो उसे उसकी चिन्ता नहीं होगी।

जिसका अपनी आवश्यकताओं पर अधिकार है, किसी चीज में 'मन' फँसा नहीं है, अर्थात् वस्तु है, तो है; नहीं है, तो नहीं सही — ऐसा जिसका 'मन' बन गया है, वही सच्चे सुख का अनुभव कर सकता है। अतएव **सुख का स्थान सामग्री - रूपी बाह्य पदार्थों में नहीं है, अपितु 'मन' में है।**

ईश्वर- प्राप्ति का मार्ग

☐ ईश्वर- मार्ग में जाने के लिए धर्मोपदेशकों ने सामान्य उपदेश किए हैं लेकिन ईश्वर- मार्ग में जानेवाले सभी लोगों के लिए एक ही मार्ग नहीं हो सकता। 'मन' को 'प्रभु' में लगाने के बहुत से रास्ते हैं।

सबके विचार एक नहीं हैं — **'मुण्डे- मुण्डे मतिर्भिन्ना।'** प्रत्येक व्यक्ति को एक ही मार्ग अनुकूल नहीं हो सकता। हरेक व्यक्ति प्रकृति के भिन्न - भिन्न अस्तित्व - बिन्दु पर है। कोई आगे, कोई मध्य में, तो कोई पीछे है। हर एक का स्थिति - स्थान अलग - अलग है। इसलिए किसी को आरम्भ से, तो किसी को एक या दूसरे बिन्दु पर से आगे बढ़ना होता है। हर एक को अपने भिन्न - भिन्न स्थान से आगे जाना पड़ता है। इसलिए किस व्यक्ति को, किस मार्ग से जाना सुगम होगा, यह तो पूर्ण अनुभवी सद् - गुरु ही, व्यक्ति के अस्तित्व अर्थात् स्थिति - स्थान को देखकर बता सकता है।

रजि० सं० ३२९८१/५७ रजि०सं० ए०डी० ९६

उपयोगी पुस्तकें

• गायत्री - कल्पतरु १५ - ००

'गायत्री' का जैसा महत्व है, उसे देखते हुए उसके दार्शनिक तत्व की विशद व्याख्या का सरल हिन्दी में अभाव ही रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में भगवती गायत्री का अत्यन्त सरल, सुबोध और वैज्ञानिक शैली में रहस्योद्घाटन किया है। इसके अतिरिक्त साधना - क्रम **सन्ध्योपासन** (प्रातः, मध्याह्न, सायं) **श्रीगायत्री - कवच - स्तोत्र, मन्त्रात्मक गायत्री - कवच, श्रीगायत्री - हृदय, श्रीगायत्री - अष्टोत्तर - सहस्र- नाम - स्तोत्र, श्रीगायत्री - पूजन - यन्त्र, श्रीगायत्री - काम्य- प्रयोग, अनुभूत प्रयोग** आदि बहु - उपयोगी विषय भी प्रकाशित हैं।

• श्रीनवरात्र - कल्पतरु ३० - ००/ सजिल्द ४०-००

'नव - रात्र' महा - पर्व की महिमा को लोग अधिक - से- अधिक समझ सकें, इसी उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक में 'नव - रात्र' के विविध पक्षों — **'नवरात्र' की ऐतिहासिकता, 'नवरात्र' की महिमा, 'नवरात्र - रहस्य'** एवं **'नवरात्र - पूजन'** पर प्रकाश डालनेवाले निबन्धों को प्रकाशित किया गया है।

• श्रीकाली - कल्पतरु ५०- ००/ सजिल्द ६० - ००

प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा सरल हिन्दी में **महा - माया काली के रहस्यों का विस्तृत स्पष्टीकरण** प्रस्तुत हुआ है। **भगवती काली की महिमा, पूजा - पद्धति** एवं **भगवती काली के उपासक, तीर्थ - स्थानादि, दुर्लभ - साहित्य** पर भी प्रकाश डाला गया है।

• श्रीदुर्गा - कल्पतरु १५ - ००

प्रस्तुत **पुस्तक** में भगवती दुर्गा के विलक्षण स्वरूपों का परिचय, श्रीदुर्गा - मन्त्र का परिचय, श्रीदुर्गा-दीप - दान प्रयोग, **श्री** दुर्गा - यन्त्र - तत्व, त्रि - शक्ति चामुण्डा का पूजन - विधान, श्रीदुर्गा - मन्त्र के काम्य - प्रयोग प्रकाशित हैं।

• भुवनेश्वरी - रहस्य (हिन्दी अर्थ सहित) ४५ - ००

इस पुस्तक में भगवती भुवनेश्वरी की पूजा - विधि, मन्त्र - भेद, कवच, नाम - साहस्र स्तोत्रादि, मन्त्र - साधना आदि रहस्य - पूर्ण विषयों पर सरल हिन्दी - अर्थ - सहित विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

• श्री ललिता - सहस्र- नाम (सविधि एवं सव्याख्या) ५० - ००

'श्रीललिता- सहस्रनाम' की महिमा आध्यात्मिक जगत् में प्रसिद्ध है। इसकी कितनी ही व्याख्याएँ संस्कृत, अंग्रेजी आदि में की गई हैं किन्तु हिन्दी में पहली बार साधकोपयोगी व्याख्या इस पुस्तक द्वारा प्रकाशित हुई है।

भगवती ललिता के एक हजार नामों की व्याख्या के साथ - साथ श्री ललिता सहस्र - नाम का सविधि मूल पाठ, प्रयोग- विधि, सामान्य प्रयोग, निष्काम - पाठ, सकाम - पाठ, पुत्र - प्राप्ति- प्रयोग, वशीकरण - प्रयोग, श्री - प्राप्ति- प्रयोग, आयुष्कर- प्रयोग, ज्वर् - हर - प्रयोग, चतुर्थ्यन्त सहस्र - नामावली, माहाम्य - निदर्शन भी इस पुस्तक में प्रकाशित है। पृष्ठ सं० लगभग ३००। आकर्षक जिल्द।

• श्री ललिता त्रि - शती (सविधि एवं सव्याख्या) २० - ००/ सजिल्द ३० - ००

भगवती ललिता के तीन सौ नामों की रचना स्वयं भगवती ललिता और श्रीकामेश्वर शिव द्वारा हुई। 'हयग्रीव' से ३०० नामों वाले इस स्तोत्र को 'अगस्त्य' मुनि ने प्राप्त किया। प्रस्तुत पुस्तक में भगवती ललिता के ३०० नामों का अर्थ, स्तोत्र का मूल - पाठ एवं प्रयोग - विधि प्रकाशित है। आकर्षक जिल्द।

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६